

# श्रीमद् भगवद् गीता

अध्याय-1	अध्याय-10
अध्याय-2	अध्याय-11
अध्याय-3	अध्याय-12
अध्याय-4	अध्याय-13
अध्याय-5	अध्याय-14
अध्याय-6	अध्याय-15
अध्याय-7	अध्याय-16
अध्याय-8	अध्याय-17
अध्याय-9	अध्याय-18

## अध्याय-1

**धृतराष्ट्र उवाच:- धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।**

**मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥ 1/1**

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः । मामकाः पाण्डवाः च एव किम् अकुर्वत संजय ।।

धृत+राष्ट्र—जिसने दूसरों की राज्य सम्पत्ति को अन्यायपूर्वक धारण कर लिया है, ऐसे धन के मद में अंधे हुए पूंजीवादी धृतराष्ट्र ने कहा— हे संजय! सं+जय इस कलियुगी संसार के अनेक प्रकार के हिन्दू—मुस्लिमादि धर्मों के युद्धक्षेत्र और उनके आधार पर आडम्बरित कर्मकाण्डों के कर्मक्षेत्र में एकत्रित हुए और धर्मयुद्ध के लिए उत्कण्ठित मेरे और पाण्डु के पुत्रों क्रमशः कौरव और पाण्डवों ने क्या किया?

**सञ्जय उवाच:- दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।**

**आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ 1/2**

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकम् व्यूढम् दुर्योधनः तदा । आचार्यम् उपसंगम्य राजा वचनम् अब्रवीत् ।।

व्यूहाकार पाण्डवों की सेना को देखकर, और तब राजा दुर्योधन पण्डित—विद्वान आचार्य द्रोण के पास जाकर यह वचन बोला ।

**पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।**

**व्यूढां दुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ 1/3**

पश्य एताम् पाण्डुपुत्राणाम् आचार्य महतीम् चमूम् । व्यूढाम् द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ।।

हे आचार्य! अपने बुद्धिमान शिष्य द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न द्वारा व्यूह रूप में सजाई गई पाण्डु—पुत्रों की इस महती सेना को देखिए ।

**धृतराष्ट्र**—धृतं राष्ट्रं येन सः जिसने चालाकी से गरीबों की धन—सम्पत्ति हड़प ली हो। **कौरव**—(कुत्सितं रवं यस्य) कौ+रव अर्थात् कौओं की तरह कुत्सित झूठी भाषणबाजी रूपी शोरगुल करने वाले (कांग्रेसी), जिन्होंने धर्मयुक्त आचार—विचार, आहार—व्यवहार का फाइव स्टार होटलों में सर्वथा त्याग कर दिया है, जिन्होंने अवतरित परमात्मा को जानने पर भी, मानने से इन्कार कर दिया है ।

**द्रोणाचार्य**—कलियुग—अंतकाल के धुरंधर पण्डित—विद्वान—आचार्य, जिनका उत्पत्ति स्थान है द्रोणः=कलशः। द्रोण+अच् अर्थात् शास्त्रीय ज्ञान रूपी देहभान की मिट्टी से बना बुद्धि का अज्ञान कलश। **पाण्डव**—भगवान को जानने, मानने और आदेशानुसार चलने वाले परमात्मा पंडा/पांडु के थोड़े से पुत्र अर्थात् कलियुग अंत के संगमयुगी भारतीय। पण्डा बाप के पुत्र **दुः+योधन**—नीति रहित दुष्ट युद्ध करने वाले कलियुगी राजनीतिक नेताएँ, जो व्यक्तिगत ग्लानि से भरे जहरीले धर्म/भाषा/राज्य/जाति भेदीय ज्ञान बम्ब बरसा कर, निरीह प्रजा का शोषण कराते हैं।

**अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।**

**युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ 1/4**

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि। युयुधानः विराटः च द्रुपदः च महारथः॥

यहाँ इस पाण्डवीय सेना में धृष्टद्युम्न ही नहीं, बल्कि युद्ध करने में भीम और अर्जुन के समान महाधनुर्धारी शूरवीर— सत्य के लिए युद्ध करने वाले युयुधान सात्यकि और विष्णु पद के पुरुषार्थी रूप विराट तथा महारथी द्रुपद हैं।

**धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।**

**पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ॥ 1/5**

धृष्टकेतुः चेकितानः काशिराजः च वीर्यवान्। पुरुजित् कुन्तिभोजः च शैब्यः च नरपुंगवः॥

धृष्टकेतु और चेकितान तथा बलवान् काशिराज, पुरुजित्, कुन्तिभोज और मनुष्यों में श्रेष्ठ शैब्य हैं।

**युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।**

**सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ 1/6**

युधामन्युः च विक्रान्त उत्तमौजाः च वीर्यवान्। सौभद्रः द्रौपदेयाः च सर्व एव महारथाः॥

विक्रमी युधामन्यु तथा वीर्यवान् उत्तमौजा, सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु और द्रौपदी के पाँचों पुत्र— ये सब ही महारथी हैं।

**अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।**

**नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥ 1/7**

अस्माकम् तु विशिष्टा ये तान् निबोध द्विजोत्तम। नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थम् तान् ब्रवीमि ते॥

हे द्विजन्मा ब्राह्मणों में उत्तम! फिर हमारे जो विशिष्ट योद्धा हैं, उन्हें भी आप जान लीजिए। वे मेरी सेना के नायक हैं। आपके परिज्ञानार्थ उन्हें बताता हूँ।

**भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः ।**

**अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥ 1/8**

भवान् भीष्मः च कर्णः च कृपः च समितिञ्जयः। अश्वत्थामा विकर्णः च सौमदत्तिः तथा एव च॥

आप स्वयं हैं और भीष्मपितामह तथा कर्ण और संग्रामजयी कृपाचार्य हैं और उसी तरह अश्वत्थामा, विकर्ण और सोमदत्त का पुत्र भूरिश्रवा है।

**अन्ये च बहवः शूराः मदर्थं त्यक्तजीविताः ।**

**नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ 1/9**

अन्ये च बहवः शूराः मदर्थं त्यक्तजीविताः। नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः॥

और भी अनेक शूर मेरे लिए अपने जीवन का त्याग करने वाले हैं। वे सभी अनेक ज्ञान शस्त्रों से प्रहार करने वाले हैं तथा ज्ञान युद्धकला में निपुण हैं।

**अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।**

**पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ 1/10**

अपर्याप्तम् तत् अस्माकम् बलम् भीष्माभिरक्षितम्। पर्याप्तम् तु इदम् एतेषाम् बलम् भीमाभिरक्षितम्॥

भीष्म से रक्षित वह हमारी सेना अपार है, जबकि भीम द्वारा रक्षित इन पाण्डुओं की सेना सीमित है।

❖ **भीष्मपितामह**—भीष्म का अर्थ—भयंकर, जो सर्प की भाँति भयंकर विषैला शास्त्रीय ज्ञान उगलते हों। पितामह 1/12—अर्थात् कलियुग अंत के उन भयंकर बाबाओं या साधुओं को भीष्मपितामह कहा जाता है, जो 'परमात्मा सर्वव्यापी' का उल्टा ज्ञान सुनाकर भारत के लोगों की बुद्धि को भटका देते हैं। हृद-बेहद के कांग्रेसी रूपी कौरवों, राजनीतिक नेताओं रूपी दुर्योधनों और पूंजीवादी धृतराष्ट्रों द्वारा परबाबा की तरह उनका बहुत सम्मान किया जाता है।

**अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।**

**भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥ 1/11**

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागम् अवस्थिताः। भीष्मम् एव अभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥

इसलिए आप सभी लोग अपने-2 विभागों के अनुसार सब मोर्चों पर डटे रहकर निःसन्देह सब ओर से भीष्म की ही रक्षा करें।

**तस्य सञ्जनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।**

**सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ 1/12**

तस्य संजनयन् हर्षम् कुरुवृद्धः पितामहः। \*सिंहनादम् विनद्य उच्चैः शंखम् दध्मौ प्रतापवान् ॥

उस दुर्योधन को हर्ष उत्पन्न कराते हुए कौरवों में वयोवृद्ध प्रतापी पितामह भीष्म ने जोर से गरजकर सिंहनाद किया और अपनी "भगवान सर्वव्यापी है" आदि की शास्त्रीय अज्ञानता का मुख रूपी शंख बजाया। \***सिंहनाद**—संसार रूपी जंगल को गुंजा देने वाले जानवर शेर की भयंकर अज्ञानता की गूँज

**ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।**

**सहस्रैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ 1/13**

ततः शंखाः च भेर्यः च पणवानकगोमुखाः। सहसा एव अभ्यहन्यन्त स शब्दः तुमुलः अभवत् ॥

तब अनेक प्रकार के मुखों वाले ज्ञान शंख और भेरियाँ तथा ढोल, नगाड़े और सिंगी आदि ज्ञान-अज्ञान के बाजे अर्थात् समाचार पत्र-पत्रिकाएँ, रेडियो, टी०वी० चैनल्स आदि मीडिया की आवाज़ एकाएक ही होने लगी। उनका बड़ा भारी शोरगुल होने लगा।

**ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।**

**माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ॥ 1/14**

ततः श्वेतैः हयैः युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ। माधवः पाण्डवः च एव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥

तब श्वेत मन रूपी घोड़ों से युक्त महान शरीर रूपी रथ में बैठे हुए कामादिक शत्रुओं को खींचने वाले शिव भगवान और कल्पान्त में आत्माओं को एकत्रित करने वाले परमपिता पण्डा रूपी पाण्डु के पुत्र अर्जुन ने भी अपने दिव्य मुख रूपी शंख बजाए।

**पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ।**

**पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ 1/15**

**अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।**

**नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ 1/16**

पाञ्चजन्यम् हृषीकेशः देवदत्तम् धनञ्जयः। पौण्ड्रम् दध्मौ महाशंखम् भीमकर्मा वृकोदरः ॥

अनन्तविजयम् राजा कुन्तीपुत्रः युधिष्ठिरः। नकुलः सहदेवः च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥

इन्द्रिय रूपी घोड़ों के स्वामी परमपिता शिव ने पंचविकार रूपी असुरों को मारने के लिए जन्म लेने वाले पाञ्चजन्य, ज्ञानधन जयी अर्जुन ने ब्रह्मा रूपी इंद्रदेव द्वारा दिया हुआ देवदत्त, अनेकानेक राक्षसों, कीचकों, सैकड़ों कौरवों की हत्या जैसे भयंकर कर्म करने वाले भेड़िए के समान खदूस बुद्धि रूपी पेट वाले भीम ने पौण्ड्र नामक महाशंख, कुन्ती माता के पुत्र राजा युधिष्ठिर ने अनन्तविजय, नकुल और सहदेव ने सुघोष और मणिपुष्पक नामक मुख रूपी शंख बजाए।

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।

धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ 1/17

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।

सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥ 1/18

काश्यः च परमेष्वासः शिखंडी च महारथः । धृष्टद्युम्नः विराटः च सात्यकिः च अपराजितः ॥

द्रुपदः द्रौपदेयाः च सर्वशः पृथिवीपते । सौभद्रः च महाबाहुः शंखान् दध्मुः पृथक् पृथक् ॥

बड़ा धनुष धारण करने वाले काशिराज ने और महारथी शिखण्डी ने एवं धृष्टद्युम्न, विराट एवं अपराजित सात्यकि ने तथा द्रुपद और द्रौपदी के पुत्रों ने एवं सुभद्रापुत्र महाबाहु अभिमन्यु ने, हे राजन्! चारों ओर अलग-2 प्रकार के मुख रूपी शंख बजाए ।

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।

नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥ 1/19

स घोषः धार्तराष्ट्राणाम् हृदयानि व्यदारयत् । नभः च पृथिवीम् च एव तुमुलः व्यनुनादयन् ॥

उस ज्ञान घोष से आकाश और पृथ्वी जोर से गूँजने लगे और पूँजीवादी धृतराष्ट्र पुत्रों काँग्रेसी-कौरवों रूपी नेताओं के हृदय विदीर्ण हो गए ।

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः ।

प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुर्दध्म्य पाण्डवः ॥ 1/20

अथ व्यवस्थितान् दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः । प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुः उदध्म्य पाण्डवः ॥

तब हनुमान लंगूर की विजय पताका से चिह्नित शरीर रूपी रथ वाले कपिध्वज पाण्डव-अर्जुन ने पूँजीवादी धृतराष्ट्र पुत्रों कौरवीय नेताओं को सज्जित देखकर, ज्ञान शस्त्र चलाने के समय अपना पुरुषार्थ रूपी धनुष उठाया ।

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।

अर्जुन उवाचः- सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ 1/21

हृषीकेशम् तदा वाक्यम् इदम् आह महीपते । सेनयोः उभयोः मध्ये रथम् स्थापय मे अच्युत ॥

हे राजन्! उस समय अर्जुन ने पवित्रता के स्वामी एवरप्योर शिव जी से यह वाक्य कहा- हे अमोघ वीर्य! मेरे रथ को दोनों सेनाओं के मध्य में खड़ा करो,

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।

कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्नरणसमुद्यमे ॥ 1/22

यावत् एतान् निरीक्षे अहम् योद्धुकामान् अवस्थितान् । कैः मया सह योद्धव्यम् अस्मिन् रणसमुद्यमे ॥

जहाँ से मैं ज्ञान युद्ध के लिए उत्सुकतापूर्वक खड़े हुए इन लोगों को देख सकूँ कि किनके साथ मुझे इस सत्य-असत्य के युद्ध में लड़ना है ।

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।

धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ 1/23

योत्स्यमानान् अवेक्षे अहम् ये एते अत्र समागताः । धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेः युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥

जो ये राजा लोग यहाँ सत्य-असत्य के युद्ध में दुर्बुद्धि दुर्योधन का प्रिय कल्याण करने की इच्छा वाले एकत्रित हुए हैं, उन योद्धाओं को मैं देखूँ ।

सञ्जय उवाचः- एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।

सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ 1/24

एवम् उक्तः हृषीकेशः गुडाकेशेन भारत । सेनयोः उभयोः मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥

हे भरतवंशी पूंजीवादी धृतराष्ट्र! निद्रा को जीतने वाले प्रजापिता ब्रह्मा रूपी अर्जुन के ऐसा कहने पर इंद्रियों के स्वामी परमपिता शिव ज्योतिर्बिन्दु ने दोनों सेनाओं के बीच में श्रेष्ठ शरीर रूपी रथ स्थापित किया

**भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।**

**उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरुनिति ॥ 1/25**

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषाम् च महीक्षिताम् । उवाच पार्थ पश्य एतान् समवेतान् कुरुन् इति ॥

और भीष्म-द्रोण आदि सब राजाओं के सामने इस प्रकार कहा- हे पृथ्वीपति प्रजापिता ब्रह्मा रूपी अर्जुन! एकत्र हुए इन कांग्रेसी कौरवों को देखो ।

**तत्रापश्यत्स्थितान्यार्थः पितृनथ पितामहान् ।**

**आचार्यान्मातुलान्भ्रातृन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥ 1/26**

**श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।**

तत्र अपश्यत् स्थितान् पार्थः पितृन् अथ पितामहान् ।

आचार्यान् मातुलान् भ्रातृन् पुत्रान् पौत्रान् सखीन् तथा ॥

श्वशुरान् सुहृदः च एव सेनयोः उभयोः अपि ।

वहाँ धर्म-कर्म की युद्धभूमि में पृथ्वीपति अर्जुन दोनों सेनाओं में खड़े हुए पितृपक्ष के बड़ों को, उसी तरह पितामहों रूपी बाबाओं, विद्वानाचार्यों, मामाओं, भाइयों, पुत्रों, पौत्रों और मित्रों, श्वशुरों और सात्यकि आदि सगे-सम्बन्धियों को भी स्पष्टतः देखने लगा ।

**तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ॥ 1/27**

**कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।**

तान् समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान् बन्धून् अवस्थितान् ॥

कृपया परया आविष्टः विषीदन् इदम् अब्रवीत् ।

वह कुंती माता का पुत्र प्रजापिता ब्रह्मार्जुन धर्मयुद्ध हेतु तैयार खड़े हुए उन सब सम्बन्धियों को देखकर बड़ी करुणा से भरकर विषाद करते हुए यह बोला-

**अर्जुन उवाचः- दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥ 1/28**

**सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।**

**वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥ 1/29**

दृष्ट्वा इमम् स्वजनम् कृष्ण युयुत्सुम् समुपस्थितम् ॥

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति । वेपथुः च शरीरे मे रोमहर्षः च जायते ॥

हे वैरी आत्माओं को आकृष्ट करने वाले परमपिता शिव! इन सामने खड़े हुए सगे-संबन्धियों को युद्ध करने के लिए उत्सुक देखकर मेरे अंग शिथिल हो रहे हैं और मुख अत्यन्त सूख रहा है तथा मेरे शरीर में कम्प और रोंगटे खड़े हो रहे हैं ।

**गाण्डीवं संसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।**

**न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥ 1/30**

**निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।**

गाण्डीवम् संसते हस्तात् त्वक् च एव परिदह्यते ।

न च शक्नोमि अवस्थातुम् भ्रमति इव च मे मनः ॥

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।

हे केशव! गाण्डीव नामक पुरुषार्थ रूपी धनुष बुद्धि रूपी हाथ से गिरा जाता है तथा त्वचा भी सब ओर से मानों दहक रही है और खड़े रहने में भी अशक्त हूँ। मेरा मन चकरा-सा रहा है और विपरीत फलसूचक शकुन मैं देख रहा हूँ।

**न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ 1/31**

**न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।**

न च श्रेयः अनुपश्यामि हत्वा स्वजनम् आहवे ।। न काङ्क्षे विजयम् कृष्ण न च राज्यम् सुखानि च ।

धर्मयुद्ध में अपने सगे-संबंधियों को हिन्दू-मुस्लिमादि दैहिक धर्मों से मारकर कल्याण भी मुझे नहीं दिखाई देता, जिससे हे कामादिक शत्रुओं को आकर्षित करने वाले कालेश्वर! मैं विजय नहीं चाहता। राज्य और स्वर्गीय सुखों को भी नहीं चाहता।

**किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ 1/32**

**येषामर्थं काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।**

**त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ 1/33**

किम् नः राज्येन गोविन्द किम् भोगैः जीवितेन वा ।।

येषाम् अर्थं काङ्क्षितम् नः राज्यम् भोगाः सुखानि च ।

त इमे अवस्थिताः युद्धे प्राणान् त्यक्त्वा धनानि च ।।

हे गोविंद! हमको राज्य से क्या? उसी तरह दिव्य भोगों अथवा जीवन से भी क्या लाभ? क्योंकि जिनके लिए हमने राज्य चाहा है, भोगों और सुखों को चाहा है, वही ये प्राणों तथा धन को त्यागकर युद्ध में स्थिर हुए खड़े हैं।

**आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।**

**मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ॥ 1/34**

आचार्याः पितरः पुत्राः तथा एव च पितामहाः । मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनः तथा ।।

द्रोणादि आचार्य, काका, बाबाएँ, पुत्र और उसी प्रकार मामा, श्वशुर, पौत्र, साले और संबंधी भी हैं।

**एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।**

**अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥ 1/35**

एतान् न हन्तुम् इच्छामि घ्नतः अपि मधुसूदन । अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किम् नु महीकृते ।।

हे मधु नामक काम विकार रूपी दैत्य को मारने वाले कामहन्ता शिव जी! मुझपर वार करते हुए भी मैं पृथ्वी के लिए तो क्या, त्रिलोकी के राज्य के कारण से भी इन्हें मारना नहीं चाहता।

**निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ।**

**पापमेवाश्रयेदस्मान् हत्वैतानाततायिनः ॥ 1/36**

निहत्य धार्तराष्ट्रान् नः का प्रीतिः स्यात् जनार्दन ।

पापम् एव आश्रयेत् अस्मान् हत्वा एतान् आततायिनः ।।

हे मनुष्यों द्वारा पुरुषार्थ-लाभ के लिए प्रार्थनीय परमेश्वर! पूंजीवादी धृतराष्ट्र के पुत्रों कौरवों को मारकर हमें क्या सुख होगा? इन आततायियों को मारकर तो हमको पाप ही लगेगा।

**तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान् स्वबान्धवान् ।**

**स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ 1/37**

तस्मात् न अर्हाः वयम् हन्तुम् धार्तराष्ट्रान् स्वबान्धवान् ।

स्वजनम् हि कथम् हत्वा सुखिनः स्याम माधव ।।

इसलिए अपने दैहिक सगे-संबंधियों सारी धन-संपत्ति धर बैठने वाले धृतराष्ट्र-पुत्रों काँग्रेसी कौरवों को मारना हमें योग्य नहीं, कारण कि स्वजनों को मारकर हे माधव!, हम सुखी कैसे होंगे?

**यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।**

**कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ 1/38**

यद्यपि एते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः । कुलक्षयकृतम् दोषम् मित्रद्रोहे च पातकम् ।।

यद्यपि राज्य-धनादि के लोभ से नष्ट हुए चित्त वाले ये लोग कुल के नाश का दोष और मित्रों से द्रोह करने में पाप नहीं समझते हैं, तो भी

**कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।**

**कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ 1/39**

कथम् न ज्ञेयम् अस्माभिः पापात् अस्मात् निवर्तितुम् ।

कुलक्षयकृतम् दोषम् प्रपश्यद्भिः जनार्दन ॥

हे परमेश्वर! हम इस पाप से अलग होने के लिए क्यों न विचार करें; क्योंकि कुल के नाश से होने वाले पाप को हम लोग देख रहे हैं।

**कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।**

**धर्मं नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ 1/40**

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः । धर्मं नष्टे कुलम् कृत्स्नम् अधर्मः अभिभवति उत ॥

कुल का नाश होने पर परम्परागत सनातन कुल की धारणाएँ नष्ट हो जाती हैं। धर्म नाश होने पर अधर्म यानी विधर्म भी समस्त कुल को चारों ओर से दबा लेता है।

**अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।**

**स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः ॥ 1/41**

अधर्माभिभवात् कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः । स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥

हे विकार रूपी असुरों को खींचने वाले! अधर्म यानी मुस्लिम-क्रिश्चियनादि विधर्मों के फैलने से कुल की स्त्रियाँ दूषित हो जाती हैं। स्त्रियों के दूषित होने पर हे वृष्णि-ज्ञानियों के वंश में उत्पन्न! व्यभिचार से उत्पन्न हुई प्रजा उत्पन्न होती है।

**सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।**

**पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥ 1/42**

संकरः नरकाय एव कुलघ्नानाम् कुलस्य च । पतन्ति पितरः हि एषाम् लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥

वर्ण संकर प्रजा कुल की और कुलनाशकों की अधोगति के लिए ही होती है, जिससे इनके पितृगण भी श्रद्धा भाव की क्रिया के लुप्त होने से अधोगति पाते हैं।

**दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः ।**

**उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ 1/43**

दोषैः एतैः कुलघ्नानाम् वर्णसंकरकारकैः । उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माः च शाश्वताः ॥

कुल का नाश करने वालों के इन वर्णसंकरकारी दोषों से जाति-धर्म और स्थायी कुल की धारणाएँ नष्ट हो जाती हैं।

**उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।**

**नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ 1/44**

उत्सन्नकुलधर्माणाम् मनुष्याणाम् जनार्दन । नरके अनियतम् वासः भवति इति अनुशुश्रुम ॥

हे परमेश्वर! नष्ट हुए कुल धर्म वाले मनुष्यों का अनिश्चित समय तक नरक में निवास होता है, ऐसा हमने सुना है।

**अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।**

**यद्वाज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥ 1/45**

अहो बत महत् पापम् कर्तुम् व्यवसिता वयम् । यत् राज्यसुखलोभेन हन्तुम् स्वजनम् उद्यताः ॥

अरे रे! हम भारी पाप करने के लिए तैयार हो गए हैं, जो राज्य-सुख के लोभ से अपने ही सगे-संबंधी जनों को मारने के लिए तैयार हो गए हैं।

**यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।**

**धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ 1/46**

यदि माम् अप्रतीकारम् अशस्त्रम् शस्त्रपाणयः। धार्तराष्ट्रा रणे हन्युः तत् मे क्षेमतरम् भवेत्।।

जो बदला न लेने वाले शस्त्र रहित मुझको, हाथ में हथियार लिए हुए पूंजीपतियों के पुत्र रूप कांग्रेसी कौरव हिन्दू-मुस्लिमादि के धर्म युद्ध में मार डालें तो वह मेरे लिए विशेष कल्याणकारी होगा।

**सञ्जय उवाच:- एवमुक्त्वार्जुनः सङ्ख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।**

**विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥ 1/47**

एवम् उक्त्वा अर्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत्। विसृज्य सशरम् चापम् शोकसंविग्नमानसः।।

ऐसा कहकर, शोक से व्याकुल हुए चित्त वाला अर्जुन रणभूमि में ज्ञान बाण सहित पुरुषार्थ रूपी धनुष को छोड़कर शरीर रूपी रथ के ऊपर हिम्मत हारकर बैठ गया।

## अध्याय-2

**सञ्जय उवाच :- तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।**

**विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ 2/1**

तम् तथा कृपया आविष्टम् अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्।

विषीदन्तम् इदम् वाक्यम् उवाच मधुसूदनः।।

मधु रूपी काम विकार को मारने वाले भगवान ने इस प्रकार करुणा से भरे हुए, आँसुओं से भरी हुई व्याकुल आँखों वाले और विषाद करने वाले उस अर्जुन को यह वचन कहे।

**भगवानुवाच :- कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।**

**अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ 2/2**

कुतः त्वा कश्मलम् इदम् विषमे समुपस्थितम्।

अनार्यजुष्टम् अस्वर्ग्यम् अकीर्तिकरम् अर्जुन।।

हे अर्जुन! अनार्यो द्वारा सेवित, स्वर्ग में न ले जाने वाली और अपकीर्तिकारक यह मलिनता असमय में तुझे कहाँ से आ गई?

**क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।**

**क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥ 2/3**

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ न एतत् त्वयि उपपद्यते।

क्षुद्रम् हृदयदौर्बल्यम् त्यक्त्वा उत्तिष्ठ परन्तप।।

हे पृथा के पुत्र अर्जुन! नपुंसक मत बनो, यह तुम्हारे योग्य नहीं है। हे कामादिक शत्रुओं को ताप देने वाले अर्जुन! क्षुद्र हृदय की दुर्बलता को छोड़कर उठो।

**अर्जुन उवाच:- कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।**

**इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ 2/4**

कथम् भीष्मम् अहम् संख्ये द्रोणम् च मधुसूदन। इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हो अरिसूदन।।

**अर्जुन ने कहा:-** हे कामनाथ! भीष्म रूप सन्यासियों च और द्रोण आदि विद्वानाचार्यों के सामने युद्ध में मैं बाणों से कैसे युद्ध करूँगा? हे कामादिक शत्रुओं को नाश करने वाले! वे दोनों मेरे पूजनीय हैं।

**गुरूनहत्वा हि महानुभावाञ्छ्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।**

**हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥ 2/5**

गुरून् अहत्वा हि महानुभावान् श्रेयः भोक्तुम् भैक्ष्यम् अपि इह लोके।

हत्वा अर्थकामान् तु गुरून् इह एव भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान्।।

महानुभाव गुरुओं को मारने की अपेक्षा इस लोक में भीख माँगकर खाना भी अच्छा है। धनेच्छुक गुरुओं को मारकर तो यहाँ रक्त से सने भोगों को ही भोगूँगा

**न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयोयद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।**



**यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥ 2/6**

न च एतत् विदमः कतरत् नः गरीयः यत् वा जयेम यदि वा नः जयेयुः ।

यान् एव हत्वा न जिजीविषामः ते अवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ।।

और हमारे लिए क्या श्रेष्ठ है अथवा कि हम जीतेंगे अथवा यदि हमको वे जीतेंगे— यह हम नहीं जानते। जिन्हें मारकर हम जीना नहीं चाहते, वे पूंजीवादी धृतराष्ट्र के पुत्र कौरवजन सामने ही खड़े हैं।

**कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः ।**

**यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥ 2/7**

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वाम् धर्मसम्मूढचेताः ।

यत् श्रेयः स्यात् निश्चितम् ब्रूहि तत् मे शिष्यः ते अहम् शाधि माम् त्वाम् प्रपन्नम् ।।

दीनता के दोष से विकृत स्वभाव वाला और धर्म के विषय में मोहित चित्त वाला मैं आपसे पूछता हूँ। जो निश्चित कल्याण की बात हो, वह मुझे कहो। मैं आपका शिष्य हूँ, आपकी शरण में आए हुए मुझको उपदेश दीजिए।

**न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।**

**अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥ 2/8**

न हि प्रपश्यामि मम अपनुद्यात् यत् शोकम् उच्छोषणम् इन्द्रियाणाम् ।

अवाप्य भूमौ असपत्नम् ऋद्धम् राज्यम् सुराणाम् अपि च आधिपत्यम् ।।

क्योंकि पृथ्वी पर निष्कंटक, एश्वर्य सम्पन्न राज्य और देवों का स्वामित्व पा करके भी, जो इन्द्रियों को सुखाने वाले मेरे शोक को दूर करे, वैसा मैं नहीं देखता।

**सञ्जय उवाचः— एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तप ।**

**न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥ 2/9**

एवम् उक्त्वा हृषीकेशम् गुडाकेशः परन्तप । न योत्स्य इति गोविन्दम् उक्त्वा तूष्णीम् बभूव ह ।।

कामादिक शत्रुओं को ताप देने वाला, निद्राजीत प्रजापिता ब्रह्मार्जुन!— इन्द्रिय रूपी घोड़ों के स्वामी परमपवित्र भगवान से ऐसा कहने के बाद 'मैं युद्ध नहीं करूँगा' ऐसा स्पष्ट कहकर चुप हो गया।

**तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।**

**सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥ 2/10**

तम् उवाच हृषीकेशः प्रहसन् इव भारत । सेनयोः उभयोः मध्ये विषीदन्तम् इदम् वचः ।।

हे भरतवंशी धृतराष्ट्र! दोनों सेनाओं के बीच में शोकाकुल उस प्रजापिता ब्रह्मार्जुन से परमपवित्र शिवबाबा प्रसन्न होते हुए के समान यह वचन कहने लगे।

**भगवानुवाचः— अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।**

**गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥ 2/11**

अशोच्यान् अन्वशोचः त्वम् प्रज्ञावादान् च भाषसे ।

गतासून् अगतासून् च न अनुशोचन्ति पण्डिताः ।।

तू शोक न करने योग्य का शोक कर रहा है तथा ज्ञानियों जैसे वचन बोलता है। पण्डितजन अनिश्चय में मरे हुए और जीने वालों का शोक नहीं करते।

**न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।**

**न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ 2/12**

न तु एव अहम् जातु न आसम् न त्वम् न इमे जनाधिपाः ।

न च एव न भविष्यामः सर्वे वयम् अतः परम् ।।

मैं कोई भी समय नहीं था—ऐसा नहीं है, उसी तरह तू नहीं था अथवा ये नेतागण नहीं थे और अब बाद में हम सब नहीं होंगे—ऐसा भी नहीं है।

**देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।**

**तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ 2/13**

देहिनः अस्मिन् यथा देहे कौमारम् यौवनम् जरा ।  
तथा देहान्तरप्राप्तिः धीरः तत्र न मुह्यति ॥

जैसे आत्मा की इस देह में कुमारावस्था, युवावस्था और बुढ़ापा होता है, वैसे ही दूसरे-2 उत्तरोत्तर पतित शरीरों की प्राप्ति होती है। धैर्यवान् पुरुष उस विषय में मोह नहीं करते।

**मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।**

**आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥ 2/14**

मात्रास्पर्शाः तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।  
आगमापायिनः अनित्याः तान् तितिक्षस्व भारत ॥

हे कुंती माता के पुत्र! इन्द्रियों के विषय तो सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख देने वाले हैं, आने और जाने वाले हैं और नित्य नहीं रहते हैं। हे भरतवंशी अर्जुन! उनको तू सहन कर।

**यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।**

**समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ 2/15**

यम् हि न व्यथयन्ति एते पुरुषम् पुरुषर्षभ । समदुःखसुखम् धीरम् सः अमृतत्वाय कल्पते ॥

हे पुरुषों आत्माओं में श्रेष्ठ प्रजापिता ब्रह्मा रूपी अर्जुन! दुःख-सुख में समान रहने वाले जिस धैर्यवान् पुरुष को ये विषय व्यथित नहीं करते, वह निश्चय ही अमरत्व अर्थात् देवत्व के लिए योग्य बनता है।

**नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।**

**उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ 2/16**

न असतः विद्यते भावः न अभावः विद्यते सतः ।  
उभयोः अपि दृष्टः अंतः तु अनयोः तत्त्वदर्शिभिः ॥

असत् वस्तु का अस्तित्व नहीं होता और सत्य वस्तु का अभाव भी नहीं होता। इन दोनों का भी निर्णय तत्वज्ञानियों द्वारा देख लिया गया है।

**अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।**

**विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ 2/17**

अविनाशि तु तत् विद्धि येन सर्वम् इदम् ततम् ।  
विनाशम् अव्ययस्य अस्य न कश्चित् कर्तुम् अर्हति ॥

जिस मनुष्य सृष्टि के बीज-रूप आदम या आदिदेव शंकर के द्वारा यह सम्पूर्ण विश्व विस्तार को प्राप्त हुआ है, उसको तो अविनाशी जान। इस अव्यय पुरुष शंकर का विनाश करने के लिए कोई भी समर्थ नहीं है।

**अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।**

**अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥ 2/18**

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्य उक्ताः शरीरिणः ।  
अनाशिनः अप्रमेयस्य तस्मात् युध्यस्व भारत ॥

नित्य, अविनाशी, माप न करने योग्य शरीर धारणकर्ता आत्मा के ये शरीर नाशवान् कहे गए हैं, इसलिए हे भरतवंशी! धर्म युद्ध कर।

**य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।**

**उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ 2/19**

य एनम् वेत्ति हन्तारम् यः च एनम् मन्यते हतम् ।  
उभौ तौ न विजानीतः न अयम् हन्ति न हन्यते ॥

जो इस आत्मा को मारने वाला समझता है और जो इसे मरा हुआ मानता है, वे दोनों ही ठीक नहीं जानते। यह आत्मा न किसी को मारता है और न मारा जाता है।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ 2/20

न जायते म्रियते वा कदाचित् न अयम् भूत्वा भविता वा न भूयः ।

अजः नित्यः शाश्वतः अयम् पुराणः न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

यह आत्मा न कभी जन्मता है और न मरता है अथवा होकर फिर से नहीं होगा—ऐसा भी नहीं है। अजन्मा, नित्य, सनातन, पुरातन यह आत्मा, शरीर नाश होने पर भी नहीं मारा जाता।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।

कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥ 2/21

वेद अविनाशिनम् नित्यम् य एनम् अजम् अव्ययम् ।

कथम् स पुरुषः पार्थ कम् घातयति हन्ति कम् ॥

हे पृथ्वीपति! जो इस आत्मा को नित्य, जन्मरहित, अक्षय और विनाशरहित जानता है, वह पुरुष किसको कैसे मरवाता है और किसको मारता है?

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ 2/22

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरः अपराणि ।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि अन्यानि संयाति नवानि देही ॥

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर दूसरे नए वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही आत्मा पुराने शरीरों को छोड़कर दूसरे नए शरीरों को ग्रहण करता जाता है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ 2/23

न एनम् छिन्दन्ति शस्त्राणि न एनम् दहति पावकः ।

न च एनम् क्लेदयन्ति आपः न शोषयति मारुतः ॥

इस आत्मा को शस्त्र नहीं काटते, इसको अग्नि नहीं जलाती, इसको पानी नहीं भिगोता और हवा भी नहीं सुखाती।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ 2/24

अच्छेद्यः अयम् अदाह्यः अयम् अक्लेद्यः अशोष्यः एव च ।

नित्यः सर्वगतः स्थाणुः अचलः अयम् सनातनः ॥

यह आत्मा काटा नहीं जा सकता, यह जलता नहीं, यह भीगता नहीं और निःसन्देह सूखता नहीं। यह नित्य, सब जगह पहुँच वाला है, सनातन, स्थितशील और अचल भी है।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।

तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥ 2/25

अव्यक्तः अयम् अचिन्त्यः अयम् अविकार्यः अयम् उच्यते ।

तस्मात् एवम् विदित्वा एनम् न अनुशोचितुम् अर्हसि ॥

यह आत्मा अव्यक्त है। यह अज्ञानियों द्वारा चिंतन न करने योग्य और यह अपने मूल रूप में विकारी न होने योग्य बताई जाती है। इस कारण इस आत्मा को ऐसा जानकर भी तू शोक करने के योग्य नहीं है

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।

तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥ 2/26

अथ च एनम् नित्यजातम् नित्यम् वा मन्यसे मृतम् ।

तथापि त्वम् महाबाहो न एवम् शोचितुम् अर्हसि ॥

और यदि इसको सदा जन्मने वाला अथवा नित्य मरने वाला मानता है, तो भी हे दीर्घबाहु! तू इस तरह शोक करने योग्य नहीं है;

**जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।  
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ 2/27**

जातस्य हि ध्रुवः मृत्युः ध्रुवम् जन्म मृतस्य च ।  
तस्मात् अपरिहार्ये अर्थे न त्वं शोचितुम् अर्हसि ॥  
क्योंकि जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है और मरने वाले का जन्म भी सुनिश्चित है, इसलिए न टलने योग्य बात में तू शोक करने के योग्य नहीं है ।

**अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।  
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ 2/28**

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत । अव्यक्तनिधनानि एव तत्र का परिदेवना ॥  
हे भरतवंशी! प्राणियों का आदि दिखाई नहीं देता । वे बीच में प्रगट होते हैं और अंत में भी प्रत्यक्ष नहीं रहते, उसमें शोक क्या करना? (इस श्लोक से आत्मा अव्यक्त लोक—परमधाम वासी प्रमाणित होती है ।)

**आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्दति तथैव चान्यः ।  
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥ 2/29**

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चित् एनम् आश्चर्यवत् वदति तथा एव च अन्यः ।  
आश्चर्यवत् च एनम् अन्यः शृणोति श्रुत्वा अपि एनम् वेद न च एव कश्चित् ॥  
कोई व्यक्ति इस आत्मा को आश्चर्य की तरह देखता है और दूसरा उसी प्रकार आश्चर्य की ज्यों वर्णन करता है और दूसरा कोई इसको आश्चर्य की तरह सुनता है और कोई सुनकर भी इसे नहीं जानता । •  
शंकर क्या करते हैं? उनका पार्ट ऐसा वण्डरफुल है जो तुम विश्वास कर न सको । मु.ता.14.5.70

**देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।  
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ 2/30**

देही नित्यम् अवध्यः अयम् देहे सर्वस्य भारत ।  
तस्मात् सर्वाणि भूतानि न त्वम् शोचितुम् अर्हसि ॥  
हे अर्जुन! यह आत्मा सबके शरीरों में सदा अवध्य है अर्थात् मारी नहीं जा सकती, इसलिए तू सब प्राणियों का शोक करने के लिए योग्य नहीं है ।

**स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।  
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ 2/31**

स्वधर्मम् अपि च अवेक्ष्य न विकम्पितुम् अर्हसि ।  
धर्म्यात् हि युद्धात् श्रेयः अन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते ॥  
इसके अतिरिक्त अपने धर्म को भी देखकर विचलित होने योग्य तू नहीं है; क्योंकि धर्म युद्ध के सिवाय क्षत्रिय—योद्धा के लिए दूसरा कल्याण नहीं है ।

**यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।  
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥ 2/32**

यदृच्छया च उपपन्नम् स्वर्गद्वारम् अपावृतम् । सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धम् ईदृशम् ॥  
अनायास प्राप्त हुए और खुले हुए स्वर्ग के द्वार स्वरूप ऐसे युद्ध को हे पृथ्वीपति! सुखी क्षत्रियजन ही पाते हैं ।

• जो (मायावी) युद्ध के मैदान में शरीर (देहभान) छोड़ेंगे वो स्वर्ग में आवेंगे ।

मु.6.5.67 पृ.1 अंत  
अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं सङ्ग्रामं न करिष्यसि ।

**ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥ 2/33**

अथ चेत् त्वम् इमम् धर्म्यम् संग्रामम् न करिष्यसि ।  
ततः स्वधर्मम् कीर्तिम् च हित्वा पापम् अवाप्स्यसि ॥

यदि तू यह धार्मिक युद्ध नहीं करेगा तो स्वधर्म और कीर्ति को नष्ट करके पाप का भागी बनेगा

**अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽज्ययाम् ।**

**सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ 2/34**

अकीर्तिम् च अपि भूतानि कथयिष्यन्ति ते अव्ययाम् ।  
सम्भावितस्य च अकीर्तिः मरणात् अतिरिच्यते ॥

और लोग निरंतर तेरी अपकीर्ति करेंगे और सम्मानित व्यक्ति के लिए अपकीर्ति मौत से भी बढ़कर है।

**भयाद्गणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।**

**येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥ 2/35**

भयात् रणात् उपरतम् मंस्यन्ते त्वाम् महारथाः ।  
येषाम् च त्वम् बहुमतः भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥

महारथी—पुरुषार्थी तुझको भय के कारण माया के युद्ध से विमुख हुआ मानेंगे। जिनके मन में तेरा बहुत मान है वे ही तुझको तुच्छ समझेंगे

**अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः ।**

**निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥ 2/36**

अवाच्यवादान् च बहून् वदिष्यन्ति तव अहिताः ।  
निन्दन्तः तव सामर्थ्यम् ततः दुःखतरम् नु किम् ॥

और तेरे विरोधी तेरे बल की निंदा करते हुए बहुत—सी अनकहनी बातें बोलेंगे। उससे बढ़कर दुःख की बात और क्या होगी!

**हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।**

**तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ 2/37**

हतः वा प्राप्स्यसि स्वर्गम् जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।  
तस्मात् उत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥

हे कुन्ती माता के पुत्र! या तो अनिश्चय बुद्धि की मौत मारा गया तो स्वर्ग को पाएगा अथवा जीतकर धरणी को भोगेगा, इसलिए युद्ध के लिए निश्चय करके उठ खड़ा हो।

**सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।**

**ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ 2/38**

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।  
ततः युद्धाय युज्यस्व न एवम् पापम् अवाप्स्यसि ॥

सुख—दुःख को, लाभ—हानि को और जय—पराजय को समान मान करके, बाद में युद्ध के लिए तैयार हो जा। इस तरह पाप को तू नहीं पाएगा।

**एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ।**

**बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥ 2/39**

एषा ते अभिहिता सांख्ये बुद्धिः योगे तु इमाम् शृणु ।  
बुद्ध्या युक्तः यया पार्थ कर्मबंधम् प्रहास्यसि ॥

हे अर्जुन! यह मत तेरे लिए ज्ञान के अनुसार कही गई है और अब आत्मा का परमात्मा के साथ योग में इस मत को तू सुन— जिस मत से युक्त हुआ तू कर्मों के बंधन को नष्ट कर देगा।

**नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।**

**स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ 2/40**

न इह अभिक्रमनाशः अस्ति प्रत्यवायः न विद्यते ।

स्वल्पम् अपि अस्य धर्मस्य त्रायते महतः भयात् ॥

इस योग में किए गए प्रयत्न का नाश नहीं होता, उल्टा फल भी नहीं होता। इस आत्म-परमात्म-ज्ञान-योग की धारणा का थोड़ा अंश भी महान भय से रक्षण करता है।

**व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।**

**बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ 2/41**

व्यवसायात्मिका बुद्धिः एका इह कुरुनन्दन ।

बहुशाखा हि अनन्ताः च बुद्धयः अव्यवसायिनाम् ॥

हे कुरुवंश को आनंदित करने वाले! इस योग मार्ग में निश्चयात्मक श्रीमत् एक भगवान की ही है, जबकि निश्चय शून्य मनुष्यों की मते तो निश्चय ही अनेक हिंदू-मुस्लिम मठ-पंथ-सम्प्रदायादि शाखाओं वाली असंख्य हैं।

**यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।**

**वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥ 2/42**

याम् इमाम् पुष्पिताम् वाचम् प्रवदन्ति अविपश्चितः ।

वेदवादरताः पार्थ न अन्यत् अस्ति इति वादिनः ॥

हे पार्थ! वेदों के अर्थवाद में लिप्त और दूसरा कोई ज्ञानमार्ग नहीं है— ऐसा कहने वाले अविवेकीजन हैं, जो ये फूली-2 आपातरमणीय वाणी बोलते हैं।

**कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।**

**क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥ 2/43**

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् । क्रियाविशेषबहुलाम् भोगैश्वर्यगतिम् प्रति ॥

वे सांसारिक कामनाओं की लालसा वाले हैं, स्वर्ग को ही परम पुरुषार्थ मानने वाले हैं और सांसारिक भोग-वैभव की प्राप्ति के लिए अनेक जन्म के कर्मफलों को प्रदान करने वाले विशेष प्रकार के यज्ञादिक क्रियाकाण्ड करने की बहुत बातें कहते हैं।

**भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।**

**व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥ 2/44**

भोगैश्वर्यप्रसक्तानाम् तया अपहृतचेतसाम् । व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥

उस आपातरमणीय वाणी से खिंचे हुए चित्त वालों की और सांसारिक विषयभोग तथा ऐश्वर्य में आसक्त जनों की अनिश्चयात्मक बुद्धि ईश्वर की याद में स्थित नहीं होती।

**त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।**

**निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥ 2/45**

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यः भवार्जुन । निर्द्वन्द्वः नित्यसत्त्वस्थः निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥

अर्ज+उनन्, हे ईश्वरीय ज्ञान द्वारा सद्भाग्य का अर्जन करने वाले-अर्जुन! वेद सत्-रज-तम, तीनों गुणों के विषय वाले हैं। तू तीन गुणों के भाव से रहित, नित्य सत्व गुण में स्थिर रहने वाला, सुख-दुःखादि द्वन्द्वों से मुक्त, प्राप्ति और उसकी रक्षा से रहित और ज्योतिर्बिन्दु स्वरूप आत्मस्थिति वाला हो।

**यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके ।**

**तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ 2/46**

यावान् अर्थः उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके । तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥

चारों ओर से लबालब भरे हुए बड़े मानसरोवर के होने पर जितना प्रयोजन पोखरे में रह जाता है, उतना ही प्रयोजन विशेष ज्ञानवान् ब्राह्मण वत्स का सब वेदों ब्रह्म वाक्य रूपी मुरलियों में रह जाता है अर्थात् साक्षात् भगवान् द्वारा सत्य ज्ञान मिल जाने से वेद आदि पढ़ने की कोई ज़रूरत नहीं रहती।

**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।**

**मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ 2/47**

कर्मणि एव अधिकारः ते मा फलेषु कदाचन ।

मा कर्मफलहेतुः भूः मा ते संगः अस्तु अकर्मणि ॥

तेरा कर्मयोग में ही अधिकार है, वर्तमानकालीन फलों में कभी भी नहीं; इसलिए कर्मफल का हेतु—उत्पादक मत बनो और तुम्हारी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो।

**योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।**

**सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ 2/48**

योगस्थः कुरु कर्माणि संगम् त्यक्त्वा धनञ्जय ।

सिद्ध्यसिद्ध्योः समः भूत्वा समत्वम् योग उच्यते ॥

धनं+जयति, हे ज्ञानधन जीतने वाले अर्जुन! आसक्ति को त्याग कर, योग में स्थित होकर, सफलता वा असफलता में समान होकर कर्मों को कर। समत्व ही योग कहा जाता है।

**दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय ।**

**बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥ 2/49**

दूरेण हि अवरम् कर्म बुद्धियोगात् धनञ्जय । बुद्धौ शरणम् अन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥

हे ज्ञानधन जीतने वाले! परमात्मा में बुद्धि लगाने के सिवाय केवल कर्म करना अत्यन्त नीचा है, तू बुद्धिमानों की शरण ले। वर्तमान जन्म में फल की इच्छा करने वाले कंजूस हैं।

**बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।**

**तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥ 2/50**

बुद्धियुक्तः जहाति इह उभे सुकृतदुष्कृते ।

तस्मात् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥

बुद्धि को परमात्मा में जोड़ने वाला इस लोक में अच्छे या चोरी आदि बुरे समझे जाने वाले, दोनों प्रकार के कर्मों को छोड़ देता है। कर्मों में युक्तियुक्त कुशलता ही योग है, इसलिए योग के लिए जुट जा।

**कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।**

**जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥ 2/51**

कर्मजम् बुद्धियुक्ता हि फलम् त्यक्त्वा मनीषिणः ।

जन्मबंधविनिर्मुक्ताः पदम् गच्छन्ति अनामयम् ॥

क्योंकि ईश्वर में बुद्धि लगाने वाले ज्ञानीजन कर्म से उत्पन्न हुए वर्तमान परिणाम को त्यागकर अर्थात् उसकी परवाह न करके, इन कलियुगी जन्मादिक दुःखों के बंधन से विशेष रूप से मुक्त होकर, दुःख रहित संगमयुगी परम पद को प्राप्त करते हैं।

**यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।**

**तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥ 2/52**

यदा ते मोहकलिलम् बुद्धिः व्यतितरिष्यति । तदा गन्तासि निर्वेदम् श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥

जब तेरी बुद्धि सुनी-सुनाई हुई बातों के मोह रूपी कीचड़ को पार कर जाएगी, तब परम वैराग्य को तू प्राप्त हो जाएगा। • सुनी-सुनाई बातों पर ही भारतवासियों ने दुर्गति को पाया है।

मु.30.1.71 पृ.4 आ.

**श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।**

### समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥ 2/53

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।  
समाधौ अचला बुद्धिः तदा योगम् अवाप्स्यसि ॥

जब तेरी नाना श्रुतियों, वेद-शास्त्रों द्वारा विक्षिप्त-भ्रमित हुई बुद्धि परमात्मा की याद में अविचल और स्थिर हो जाएगी, तब तू सम्पूर्ण योग की अवस्था को पा लेगा ।

• इन शास्त्र आदि पढ़ने से किसको सद्गति नहीं मिलती। मनुष्य आत्माओं की सद्गति का ज्ञान इन शास्त्रों में नहीं है। मानवीय गीता से भी किसकी सद्गति हो नहीं सकती। मु.ता.20.5.92 पृ.1 आ.

अर्जुन उवाच:- स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।

### स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत् ब्रजेत किम् ॥ 2/54

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।  
स्थितधीः किम् प्रभाषेत किम् आसीत् ब्रजेत किम् ॥

'क'+ईश अर्थात् हे 'ब्रह्मा' रूपी बैल के ईश्वर शिवशंकर जी! स्थिर बुद्धि का और परमात्मा की याद में स्थित होने वाले की क्या परिभाषा है? स्थिर बुद्धि वाला कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है?

श्रीभगवानुवाच:- प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।

### आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ 2/55

प्रजहाति यदा कामान्\* सर्वान् पार्थ मनोगतान् ।  
आत्मनि एव आत्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञः तदा उच्यते ॥

हे पृथ्वीपति! मनोगत सब वर्तमान जन्म की लौकिक इच्छाओं को जब मनुष्य त्याग देता है और अपने आपसे आत्म स्थिति में ही संतुष्ट-प्रसन्न रहता है, तब स्थिर बुद्धि वाला कहा जाता है।

\* इच्छामात्रमविद्या

### दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।

### वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ 2/56

दुःखेषु अनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः । वीतरागभयक्रोधः स्थितधीः मुनिः उच्यते ॥

दुःखों में उद्वेग-बेचैनी से रहित मन वाला, लौकिक सुखों में इच्छारहित और राग-भय-क्रोध से रहित मननशील व्यक्ति स्थिरबुद्धि कहा जाता है।

### यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।

### नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ 2/57

यः सर्वत्र अनभिस्नेहः तत् तत् प्राप्य शुभाशुभम् ।  
न अभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

जो देह और देह के सर्व सम्बंधों-पदार्थों में स्नेहरहित हुआ उन-2 शुभ या अशुभ को पाकर न आनंदित होता है, न द्वेष करता है, उसकी बुद्धि दृढ़तापूर्वक स्थिर है।

### यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।

### इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ 2/58

यदा संहरते च अयम् कूर्मः अंगानि इव सर्वशः ।  
इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेभ्यः तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

और जब यह योगी पुरुष कछुए के अंगों की तरह इन्द्रियों को इन्द्रियों के विषयों से सब ओर से खींच लेता है, तब उसकी बुद्धि दृढ़ता से स्थिर हो जाती है।

### विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।

### रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ 2/59

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः । रसवर्जम् रसः अपि अस्य परम् दृष्ट्वा निवर्तते ॥



विषय भोगों का आहार न करने वाले पुरुष के विषय भोग हट जाते हैं; किंतु राग—आसक्ति नहीं हटती। जबकि इस योगी की आसक्ति भी परमार्थ को देखकर हट जाती है।

**यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।**

**इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ 2/60**

यततः हि अपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः। इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥

हे कुन्ती माता के पुत्र! प्रयत्न करते हुए बुद्धिमान् पुरुष की भी मथ डालने वाली इन्द्रियाँ मन को बलपूर्वक खींच लेती हैं।

**तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।**

**वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ 2/61**

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।

वशे हि यस्य इन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

उन सब इन्द्रियों को वश में करके मुझ ज्योतिर्विन्दु स्वरूप परम आत्मा में मन लगाना चाहिए; क्योंकि जिसकी इन्द्रियाँ वश में हैं, उसकी बुद्धि दृढ़तापूर्वक स्थिर रहती है।

**ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।**

**सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ 2/62**

ध्यायतः विषयान् पुंसः संगः तेषु उपजायते।

संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधः अभिजायते॥

विषयों का ध्यान करने वाले पुरुष को उन विषयों में आसक्ति उत्पन्न होती है। आसक्ति से कामना पैदा होती है, कामना की पूर्ति न होने से क्रोध उत्पन्न होता है।

**क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।**

**स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ 2/63**

क्रोधात् भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।

स्मृतिभ्रंशात् बुद्धिनाशः बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥

क्रोध से सम्पूर्ण मोह अर्थात् मूढ़ता आती है, मूढ़ता से स्मृति का नाश होता है, स्मृति के भ्रष्ट होने से बुद्धि का नाश होता है और बुद्धि का नाश होने से अनिश्चय बुद्धि रूपी मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

**रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।**

**आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ 2/64**

रागद्वेषवियुक्तैः तु विषयान् इन्द्रियैः चरन्। आत्मवश्यैः विधेयात्मा प्रसादम् अधिगच्छति॥

परंतु अनुशासित मन वाला पुरुष रागद्वेषविहीन और आत्मा के वशीभूत हुई इन्द्रियों के द्वारा आत्मकल्याणार्थ उचित विषयों का आचरण करता हुआ प्रसन्नता को प्राप्त करता है।

**प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।**

**प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥ 2/65**

प्रसादे सर्वदुःखानाम् हानिः अस्य उपजायते। प्रसन्नचेतसः हि आशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥

प्रसन्नता प्राप्त होने पर इस पुरुष के सब दुःखों का नाश हो जाता है; क्योंकि प्रसन्नचित्त हर्षितमुख व्यक्ति की बुद्धि शीघ्र ही भली—भाँति स्थिर हो जाती है। {हर्षितमुखता}

**नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।**

**न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥ 2/66**

न अस्ति बुद्धिः अयुक्तस्य न च अयुक्तस्य भावना।

न च अभावयतः शान्तिः अशान्तस्य कुतः सुखम्॥

अयोगी/भोगी व्यक्ति में सात्विकी बुद्धि नहीं होती और अयोगी व्यक्ति में भावना भी नहीं होती और भावनाहीन को शान्ति नहीं होती; अतः अशांत व्यक्ति को सुख कहाँ से होगा?

**इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।**

**तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥ 2/67**

इन्द्रियाणाम् हि चरताम् यत् मनः अनु विधीयते ।

तत् अस्य हरति प्रज्ञाम् वायुः नावम् इव अम्भसि ॥

जो मन विषयों में विचरण करती हुई इन्द्रियों का अनुसरण करता है, वह मन वायु द्वारा पानी में नाव की तरह इस पुरुष की बुद्धि को हर लेता है ।

**तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।**

**इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ 2/68**

तस्मात् यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।

इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेभ्यः तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

हे सहयोगियों रूपी लम्बी भुजा वाले! इसलिए जिसकी इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषयों से सब प्रकार से रोक ली गई हैं, उसकी बुद्धि स्थिर है ।

**या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।**

**यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ 2/69**

या निशा सर्वभूतानाम् तस्याम् जागर्ति संयमी ।

यस्याम् जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतः मुनेः ॥

सर्व सामान्य प्राणियों की जो आध्यात्मचिन्तन रूपी रात्रि है, उस अध्यात्म जगत में योगी जागता है और जिस दुनियावी भौतिकता की अज्ञान रात्रि में सांसारिक प्राणी जागते हैं, वह मननशील मुनि के लिए रात्रि है ।

**आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।**

**तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥ 2/70**

आपूर्यमाणम् अचलप्रतिष्ठम् समुद्रम् आपः प्रविशन्ति यद्वत् ।

तद्वत् कामाः यम् प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिम् आप्नोति न कामकामी ॥

चारों ओर से भरपूर अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में जैसे नदी-नालों के जल प्रवेश पाते हैं, वैसे ही जिस पुरुष की सारी कामनाएँ ज्ञान सागर परमात्मा में प्रवेश कर जाती हैं, वह पुरुष शान्ति को पाता है; कामनाओं का इच्छुक नहीं पाता है । ♦ एक शिवबाबा दूसरा न कोई, बाकी सब इच्छामात्रमविद्या

**विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।**

**निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ॥ 2/71**

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमान् चरति निःस्पृहः ।

निर्ममः निरहंकारः स शान्तिम् अधिगच्छति ॥

जो पुरुष सब कामनाओं को छोड़कर लालसारहित, ममताहीन और निरहंकारी भाव का आचरण करता है, वह शान्ति प्राप्त करता है ।

**एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।**

**स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ 2/72**

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ न एनाम् प्राप्य विमुह्यति ।

स्थित्वा अस्याम् अन्तकाले अपि ब्रह्मनिर्वाणम् ऋच्छति ॥

हे अर्जुन! यह ब्रह्मा से उत्पन्न हुई अव्यक्त अवस्था है । इसको प्राप्त करके मनुष्य मोह में नहीं पड़ता और महामृत्यु के समय भी इस अवस्था में स्थिर होकर पारलोक को प्राप्त करता है ।

## अध्याय-3

अर्जुन उवाच:- ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।

तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥ 3/1

ज्यायसी चेत् कर्मणः ते मता बुद्धिः जनार्दन ।

तत् किम् कर्मणि घोरे माम् नियोजयसि केशव ॥

जनैरर्घते याच्यते पुरुषार्थलाभाय, अर्द+ल्युट्; हे परमेश्वर! आप कर्म से बुद्धियोग श्रेष्ठ मानते हों, तो हे परमेश्वर! मायावी युद्ध जैसे भयंकर कर्म में मुझे किसलिए लगा रहे हो?

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।

तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ 3/2

व्यामिश्रेण इव वाक्येन बुद्धिम् मोहयसि इव मे ।

तत् एकम् वद निश्चित्य येन श्रेयः अहम् आप्नुयाम् ॥

परस्पर मिले हुए—से वाक्यों से मेरी बुद्धि भ्रमित—सी कर रहे हो। तो निश्चय करके एक बात कहो, जिससे मैं कल्याण को प्राप्त करूँ।

भगवानुवाच:- लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मया नघ ।

ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥ 3/3

लोके अस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मया अनघ ।

ज्ञानयोगेन सांख्यानाम् कर्मयोगेन योगिनाम् ॥

हे पाप रहित अर्जुन! सृष्टि के आदि में मैंने इस लोक में दो प्रकार की प्रणाली कही थी। ज्ञान—योग द्वारा ज्ञानियों की अर्थात् चिंतनशील पुरुषों के लिए ज्ञानयोग और योगीजनों के लिए कर्मयोग द्वारा मार्ग बताया था।

न कर्मणामनारम्भान् नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।

न च सन्न्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥ 3/4

न कर्मणाम् अनारम्भात् नैष्कर्म्यम् पुरुषः अश्नुते ।

न च संन्यसनात् एव सिद्धिम् समधिगच्छति ॥

व्यक्ति कर्मों के आरम्भ न करने से कर्मशून्यता रूप संन्यास को नहीं प्राप्त करता, उसी तरह कर्मों के सम्पूर्ण त्याग से भी मुक्ति रूपी सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ 3/5

न हि कश्चित् क्षणम् अपि जातु तिष्ठति अकर्मकृत् ।

कार्यते हि अवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैः गुणैः ॥

निःसन्देह कोई भी पुरुष क्षण भर भी कर्म किए बिना रह नहीं पाता; क्योंकि प्रकृति से उत्पन्न तीनों गुणों के कारण सबको बरबस ही कर्म करने पड़ते हैं।

कर्मन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।

इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ 3/6

कर्मन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।

इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥

जो महामूर्ख कर्मन्द्रियों को जबरियन रोक कर इन्द्रियों के विषय—भोगों को मन से याद करता हुआ बैठा रहता है, वह पाखण्डी—ढोंगी कहा जाता है।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।

**कर्मन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ 3/7**

यः तु इन्द्रियाणि मनसा नियम्य आरभते अर्जुन ।  
कर्मन्द्रियैः कर्मयोगम् असक्तः स विशिष्यते ॥

हे अर्जुन! परंतु जो इन्द्रियों को मन से नियंत्रित करके अनासक्त हुआ कर्मद्रियों से कर्म करते हुए ईश्वरीय स्मृति का अनुष्ठान करता है, वह औरों से श्रेष्ठ है।

**नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।**

**शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः ॥ 3/8**

नियतम् कुरु कर्म त्वम् कर्म ज्यायः हि अकर्मणः ।  
शरीरयात्रा अपि च ते न प्रसिद्धयेत् अकर्मणः ॥

तू नियत किए हुए कर्मों को कर। कर्म न करने से कर्म करना ही श्रेष्ठ है और बिना कर्म के तेरा शारीरिक निर्वाह भी सिद्ध नहीं होगा।

**यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।**

**तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥ 3/9**

यज्ञार्थात् कर्मणः अन्यत्र लोकः अयम् कर्मबंधनः ।  
तदर्थम् कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर ॥

रुद्र ज्ञान यज्ञ के सिवाय दूसरे किसी भी लौकिक कर्म द्वारा यह संसार कर्मबंधन में डालने वाला है। हे कुन्ती माता के पुत्र! लौकिक कर्मों प्रति आसक्ति छोड़कर उस रुद्र यज्ञ के लिए कर्म कर।

**सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।**

**अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥ 3/10**

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरा उवाच प्रजापतिः ।  
अनेन प्रसविष्यध्वम् एषः वः अस्तु इष्टकामधुक् ॥

सृष्टि के आदि में रुद्र ज्ञान यज्ञ सहित मानसी प्रजा को उत्पन्न करके प्रजापिता ब्रह्मा ने उस प्रजा से कहा कि इस यज्ञ द्वारा वृद्धि प्राप्त करो, यह यज्ञ तुम्हारी इष्ट कामनाओं की पूर्ति करने वाला हो।

**देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।**

**परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ 3/11**

देवान् भावयत अनेन ते देवा भावयन्तु वः । परस्परम् भावयन्तः श्रेयः परम् अवाप्स्यथ ॥

इस यज्ञ से श्रेष्ठ देवात्माओं को सन्तुष्ट करो और वे दिव्यात्माएँ तुमको दिव्य गुण आदि से सन्तुष्ट करें। इस तरह परस्पर, एक-दूसरे को तृप्त करते हुए परम् कल्याण को प्राप्त करो।

**इष्टान्भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।**

**तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥ 3/12**

इष्टान् भोगान् हि वः देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।  
तैः दत्तान् अप्रदाय एभ्यः यः भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥

यज्ञ सेवा से संतुष्ट हुए ब्राह्मण देव ही तुमको इच्छित भोग प्रदान करेंगे। उनके द्वारा दिए हुए भोगों को उन्हें अर्पण किए बिना जो पुरुष भोगता है, वह चोर ही है।

**यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।**

**भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ 3/13**

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तः मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।  
भुञ्जते ते तु अघम् पापा ये पचन्ति आत्मकारणात् ॥

यज्ञ से बचे हुए को खाने वाले संत-पुरुष सब पापों से मुक्त हो जाते हैं। जो अपने लिए ही बनाते हैं, वे पापी लोग तो पाप को ही भोगते हैं।

**अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।**

**यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ 3/14**

अन्नात् भवन्ति भूतानि पर्जन्यात् अन्नसम्भवः। यज्ञात् भवति पर्जन्यः यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।

अद्+क्त स्मृति रूपी भोजन से सात्विक मानसी सृष्टि के प्राणियों की उत्पत्ति होती है, ज्ञान वर्षा से स्मृति रूपी भोजन उत्पन्न होता है, रुद्र ज्ञान यज्ञ अर्थात् ईश्वरीय सेवा से ज्ञान-अमृत की वृष्टि होती है और यज्ञ कर्मयोग से उत्पन्न हुआ है।

**कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।**

**तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ 3/15**

कर्म ब्रह्मोद्भवम् विद्धि ब्रह्म अक्षरसमुद्भवम्।

तस्मात् सर्वगतम् ब्रह्म नित्यम् यज्ञे प्रतिष्ठितम्।।

सात्विक कर्म को ब्रह्मा से उत्पन्न हुआ जान और ब्रह्मा अक्षर परमेश्वर सदाशिव-शंकर से उत्पन्न हुआ है; इसलिए रुद्र ज्ञान यज्ञ में सब जगह अपनी संकल्प शक्ति से पहुँचा हुआ ब्रह्मा सर्वदा प्रतिष्ठित है अर्थात् जहाँ-2 ज्ञान-यज्ञ होता है, वहाँ-2 ब्रह्मा स्वरूप हनुमान की उपस्थिति होती है।

• जो साकार रूप में ब्रह्मा बाप ने जैसा किया, जो किया, वही सात्विक कर्म करना है। फॉलो फादर करना है। अ.वा.19.12.84 पृ.75 म.

**एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।**

**अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥ 3/16**

एवम् प्रवर्तितम् चक्रम् न अनुवर्तयति इह यः।

अघायुः इन्द्रियारामः मोघम् पार्थ स जीवति।।

इस संसार में जो पुरुष इस प्रकार चलाए गए चक्र का अनुसरण नहीं करता अर्थात् सहायक नहीं बनता, हे पृथ्वीपति! वह पापपूर्ण जीवन बिताने वाला और इन्द्रियों के सुखों में मग्न रहने वाला व्यर्थ ही जीवन बिता रहा है;

**यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।**

**आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ 3/17**

यः तु आत्मरतिः एव स्यात् आत्मतृप्तः च मानवः।

आत्मनि एव च संतुष्टः तस्य कार्यम् न विद्यते।।

परंतु जो मनुष्य ज्योतिर्बिन्दु रूप आत्मा में ही प्रीति वाला और आत्मा से तृप्त, उसी तरह आत्मा में ही अत्यन्त प्रसन्न हो, उसके लिए कोई कार्य नहीं रहता। जैसे सतयुगी देवात्माएँ

**नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।**

**न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ 3/18**

न एव तस्य कृतेन अर्थः न अकृतेन इह कश्चन।

न च अस्य सर्वभूतेषु कश्चित् अर्थव्यपाश्रयः।।

इस लोक में उसको न कुछ करने से प्रयोजन है, उसी तरह न करने से भी कोई खास प्रयोजन नहीं है और न इस पुरुष का किसी प्राणी पर कोई कार्य निर्भर करता है।

**तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।**

**असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ 3/19**

तस्मात् असक्तः सततम् कार्यम् कर्म समाचर।

असक्तः हि आचरन् कर्म परम् आप्नोति पूरुषः।।

इससे अनासक्त हुआ निरंतर करने योग्य कर्मों का तू आचरण कर; क्योंकि अनासक्त पुरुष कर्मों का आचरण करता हुआ विष्णु रूप परम पद को प्राप्त करता है;

**कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।**

**लोकसङ्ग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ॥ 3/20**

कर्मणा एव हि संसिद्धिम् आस्थिताः जनकादयः।

लोकसंग्रहम् एव अपि सम्पश्यन् कर्तुम् अर्हसि ।।  
क्योंकि जनक आदि कर्म द्वारा ही सम्यक् सिद्धि को प्राप्त हुए थे। लोक संग्रह को भलीभाँति देखते हुए भी तू कर्म करने के लिए ही योग्य है।

**यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।**

**स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ 3/21**

यत् यत् आचरति श्रेष्ठः तत् तत् एव इतरः जनः ।

स यत् प्रमाणम् कुरुते लोकः तत् अनुवर्तते ।।

उत्तम पुरुष जो-2 आचरण करता है, वैसा ही दूसरे सामान्य लोग भी करते हैं। वह उत्तम पुरुष जिस प्रमाणित कार्य को करता है, सामान्य लोग उस कार्य का ही अनुसरण करते हैं। • जैसा कर्म हम ब्राह्मण करेंगे, हमको देख और करेंगे। मु.6.6.90 पृ.2आ.

**न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।**

**नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥ 3/22**

न मे पार्थ अस्ति कर्तव्यम् त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।

न अनवाप्तम् अवाप्तव्यम् वर्त एव च कर्मणि ।।

हे पृथ्वीपति! तीनों लोकों में मुझको कुछ भी करने योग्य कर्म नहीं है, ऐसा कुछ पाने योग्य नहीं है जो प्राप्त न हुआ हो, तो भी कर्मों में लगा हुआ हूँ।

**यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।**

**मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ 3/23**

यदि हि अहम् न वर्तेयम् जातु कर्मणि अतन्द्रितः ।

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।।

क्योंकि जो मैं कदाचित् कर्मों में आलस्यहीन होकर न लगा रहूँ, तो हे पार्थ! सब मनुष्य मेरे मार्ग का सब प्रकार से अनुसरण करने लगे।

**उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।**

**सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥ 3/24**

उत्सीदेयुः इमे लोका न कुर्याम् कर्म चेत् अहम् ।

संकरस्य च कर्ता स्याम् उपहन्याम् इमाः प्रजाः ।।

मैं विश्व नवनिर्माण का कार्य न करूँ, तो ये मनुष्य समूल नष्ट हो जायँ और मैं वर्णसंकर प्रजा का करने वाला बनूँ और अंततः इस ब्राह्मण वर्णावली प्रजा का विनाश कर बैदूँ।

**सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।**

**कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसङ्ग्रहम् ॥ 3/25**

सक्ताः कर्मणि अविद्वांसः यथा कुर्वन्ति भारत ।

कुर्यात् विद्वान् तथा असक्तः चिकीर्षुः लोकसंग्रहम् ।।

हे भरतवंशी! अज्ञानी लोग जैसे कर्म में आसक्त होकर कर्म करते हैं, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष अनासक्त होकर संसार व्यवस्था की इच्छा से कर्म करे।

**न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् ।**

**जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥ 3/26**

न बुद्धिभेदम् जनयेत् अज्ञानाम् कर्मसंगिनाम् ।

जोषयेत् सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन् ।।

सांसारिक कर्मों में आसक्त अज्ञपुरुषों की बुद्धि में भेद अर्थात् संशय पैदा न करे, उन्हें कर्म से विचलित न करे, अपितु कर्मयोगी-लगनशील ज्ञानी स्वयं सब यज्ञ-कर्मों का आचरण करता हुआ दूसरों को यज्ञ-कर्म में लगाए।

**प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।**

**अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ 3/27**

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः। अहंकारविमूढात्मा कर्ता अहम् इति मन्यते।।

सब कार्य सब प्रकार से अनादि निश्चित प्राणी स्वभाव के सात्विक, राजसी और तामसी गुणों द्वारा किए जा रहे हैं, जिससे अहंकार से विमूढ़ बना पुरुष ऐसा मानता है कि केवल मैं ही करने वाला हूँ;

**तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।**

**गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥ 3/28**

तत्त्ववित्तु तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः। गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते।।

किंतु हे दीर्घबाहु! गुण और कर्म के विभाग का तत्व जानने वाला पुरुष— गुण परस्पर गुणों में क्रिया कर रहे हैं, ऐसा मानकर आसक्त नहीं होता अर्थात् अनादि निश्चित ज्ञानानुसार सारे कार्य स्वभावतः हो रहे हैं।

**प्रकृतेर्गुणसम्मूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।**

**तानकृत्स्नविदो मन्दाकृत्स्नविन् विचालयेत् ॥ 3/29**

प्रकृतेः गुणसम्मूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु।

तान् अकृत्स्नविदः मन्दान् कृत्स्नवित् न विचालयेत्।।

त्रिगुणमयी प्रकृति के गुणों से भ्रान्त हुए लोग उन गुणों से उत्पन्न कर्मों में आसक्त हो जाते हैं। उन अधकचरी समझ वाले मन्दबुद्धि लोगों को सम्पूर्ण ज्ञानी विचलित न करे।

**मयि सर्वाणि कर्माणि सन्न्यस्याध्यात्मचेतसा ।**

**निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥ 3/30**

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्न्यस्य अध्यात्मचेतसा। निराशीः निर्ममः भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः।।

आध्यात्मिक बुद्धि से मेरे में सब कर्मों को अर्पण करके समस्त लौकिक इच्छाओं से रहित तथा ममतारहित होकर और शोकरहित होकर तू युद्ध कर।

**ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।**

**श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ॥ 3/31**

ये मे मतम् इदम् नित्यम् अनुतिष्ठन्ति मानवाः।

श्रद्धावन्तः अनसूयन्तः मुच्यन्ते ते अपि कर्मभिः।।

जो श्रद्धावान् ईर्ष्यारहित हुए मनुष्य मेरी इस श्रीमत का निरंतर पालन करते हैं, वे भी कर्मबंधन से मुक्त हो जाते हैं;

**ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।**

**सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥ 3/32**

ये तु एतत् अभ्यसूयन्तः न अनुतिष्ठन्ति मे मतम्।

सर्वज्ञानविमूढान् तान् विद्धि नष्टान् अचेतसः।।

किन्तु जो ईर्ष्या करने वाले लोग मेरी इस श्रीमत का पालन नहीं करते, उन सम्पूर्ण ज्ञान के प्रति अंधे, बुद्धुओं को नष्ट हुआ जान।

**सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।**

**प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥ 3/33**

सदृशम् चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेः ज्ञानवान् अपि।

प्रकृतिम् यान्ति भूतानि निग्रहः किम् करिष्यति।।

ज्ञानी मनुष्य भी अपने अनादि निश्चित स्वभाव के अनुसार आचरण करता है, प्राणी अपने स्वभाव की ओर जाते हैं। इस विषय में तू रोकथाम या बलप्रयोग क्या करेगा!

**इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।**

**तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥ 3/34**

इन्द्रियस्य इन्द्रियस्य अर्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।

तयोः न वशम् आगच्छेत् तौ हि अस्य परिपन्थिनौ ॥

इन्द्रिय का उस इन्द्रिय के विषय-भोग में राग अथवा द्वेष होता है, उन राग-द्वेष दोनों के वश में न आए; क्योंकि वे दोनों इस पुरुष के शत्रु हैं।

**श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।**

**स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ 3/35**

श्रेयान् स्वधर्मः विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात् । स्वधर्मे निधनम् श्रेयः परधर्मः भयावहः ॥

स्वधर्म का पालन करने से तीनों गुणों से विहीन ज्योतिर्बिन्दु आत्मा का सात्त्विक धर्म प्रकृति अर्थात् देह के जड़तत्वादि धर्म से श्रेष्ठ है। शान्त-चेतन ज्योतिर्बिन्दु स्वरूप आत्मा की धारणा में टिककर देह त्यागना कल्याणकर है, प्रकृति अर्थात् देह का धर्म खतरनाक है अर्थात् ज्योतिर्बिन्दु चेतन आत्मा के गुणों को धारण करना श्रेष्ठ है, जड़ देह के गुणों की धारणा ठीक नहीं।

**अर्जुन उवाच:- अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।**

**अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥ 3/36**

अथ केन प्रयुक्तः अयम् पापम् चरति पूरुषः ।

अनिच्छन् अपि वार्ष्णेय बलात् इव नियोजितः ॥

वृष्णि-मेघ रूपी अज्ञान में से उत्पन्न हुए ज्ञानसूर्य-हे परमेश्वर! इच्छा न करते हुए भी पीछे से बलपूर्वक लगाए हुए की तरह यह पुरुष किसकी प्रेरणा से पाप करता है?

**श्रीभगवानुवाच:- काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।**

**महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ 3/37**

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः । महाशनः महापाप्मा विद्धि एनम् इह वैरिणम् ॥

रजोगुण से उत्पन्न यह काम अथवा यह क्रोध बहुत भोग चाहता है और बड़ा पापी है। इस संसार में इसको वैरी समझ।

**धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।**

**यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ 3/38**

धूमेन आव्रियते वः यथा आदर्शः मलेन च ।

यथा उल्बेन आवृतः गर्भः तथा तेन इदम् आवृतम् ॥

जैसे अग्नि धुँ से और शीशा मैल से ढक जाता है तथा जैसे गर्भ थैली से ढका रहता है, वैसे ही उस काम अथवा क्रोध से यह ज्ञान ढका रहता है।

**आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।**

**कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥ 3/39**

आवृतं ज्ञानम् एतेन ज्ञानिनः नित्यवैरिणा । कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेण अनलेन च ॥

हे कुन्ती माता के पुत्र! ज्ञानी पुरुष का नित्य शत्रु जैसा तथा कभी पूर्ति न होने वाली इस कामविकार रूपी अग्नि से ज्ञान ढका रहता है।

**इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।**

**एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ 3/40**

इन्द्रियाणि मनः बुद्धिः अस्य अधिष्ठानम् उच्यते ।

एतैः विमोहयति एषः ज्ञानम् आवृत्य देहिनम् ॥



दस इन्द्रियाँ, संकल्प शक्ति और निर्णयात्मक बुद्धि— इस काम रूपी शत्रु का आश्रयस्थान कही जाती है। यह काम विकार इनके द्वारा ज्ञान को ढक कर देहधारी जीवात्मा को पथभ्रष्ट करता है।

**तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।**

**पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ 3/41**

तस्मात् त्वम् इन्द्रियाणि आदौ नियम्य भरतर्षभ ।

पाप्मानम् प्रजहि हि एनम् ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥

हे भरतवंश में श्रेष्ठ! इसलिए तू पहले इंद्रियों को नियंत्रित करके, ज्ञान और योग का नाश करने वाले इस पापी काम विकार को अवश्य त्याग दे।

**इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।**

**मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥ 3/42**

इन्द्रियाणि पराणि आहुः इन्द्रियेभ्यः परम् मनः । मनसः तु परा बुद्धिः यः बुद्धेः परतः तु सः ॥

कहा जाता है कि इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल हैं; मन इन्द्रियों से बड़ा है; बुद्धि मन से भी बड़ी है; किंतु जो बुद्धि से बड़ा है वह परमात्मा है। {बुद्धिमानों की बुद्धि परमात्मा}

**एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।**

**जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥ 3/43**

एवम् बुद्धेः परम् बुद्ध्वा संस्तभ्य आत्मानम् आत्मना ।

जहि शत्रुम् महाबाहो कामरूपम् दुरासदम् ॥

इस प्रकार निश्चयात्मक बुद्धि से जो परे है, उस परमपिता परमात्मा शिव को जानकर, अपने को अपने मन-बुद्धि द्वारा स्थिर करके हे दीर्घबाहु! तू कठिनाई से हाथ आने वाले इस काम विकार रूपी शत्रु को मार डाल।

## अध्याय- 4

**श्रीभगवानुवाच:- इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।**

**विवस्वान्मनवे प्राह मनुर्इक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥ 4/1**

इमम् विवस्वते योगम् प्रोक्तवान् अहम् अव्ययम् ।

विवस्वान् मनवे प्राह मनुः इक्ष्वाकवे अब्रवीत् ॥

मैंने यह अविनाशी योग विवस्वान् नामक आदि मनु अर्थात् प्रजापिता ब्रह्मा को कहा था, विवस्वान् मनु ने अपने पुत्रों सात मनुओं को कहा और मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु अर्थात् इच्छा करने वाले त्रेतान्त के राजा कामदेव को कहा। ✨ मनु=मनन-चिंतन-मंथन शील

**एवं परम्पराप्राप्तमिमं • राजर्षयो विदुः ।**

**स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ॥ 4/2**

एवम् परम्पराप्राप्तम् इमम् राजर्षयः विदुः । स कालेन इह महता योगः नष्टः परंतप ॥

इस प्रकार परम्परा से पीढ़ी दर पीढ़ी आते हुए इसे विक्रमादित्यादि राजर्षियों ने जाना। हे कामादिक परम शत्रुओं को तपाने वाले! वह योग लम्बे काल से इस कलियुग में नष्ट हो गया है।

• पहले ब्रह्मर्षियों को जानना चाहिए, फिर राजर्षियों को जानना चाहिए।

**स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।**

**भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥ 4/3**

स एव अयम् मया ते अद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।

भक्तः असि मे सखा च इति रहस्यम् हि एतत् उत्तमम् ॥

तू मेरा भक्त और मित्र है, इस कारण से वही यह प्राचीन योग मैंने तुझको आज कहा है। यह निश्चय ही श्रेष्ठतम रहस्य है।

**अर्जुन उवाच:- अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ।**

**कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥ 4/4**

अपरम् भवतः जन्म परम् जन्म विवस्वतः ।

कथम् एतत् विजानीयाम् त्वम् आदौ प्रोक्तवान् इति ॥

आदि मनु प्रजापिता ब्रह्मा का दिव्य जन्म प्राचीन काल में हुआ है और आपका दिव्य जन्म अब द्वापर/कलियुगांत में हुआ है, तो आपने सतयुग आदिकाल में यह योग कहा—यह कैसे मानूँ?

**श्रीभगवानुवाच:- बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।**

**तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ॥ 4/5**

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव च अर्जुन ।

तानि अहम् वेद सर्वाणि न त्वम् वेत्थ परन्तप ॥

हे अर्जुन! मेरे भगवान् रूप में और तेरे प्रजापिता ब्रह्मार्जुन रूप में असंख्य कल्पों में असंख्य जन्म बीत चुके हैं। उन सब कल्पों में हुए जन्मों को मैं जानता हूँ, हे कामादिक परम शत्रुओं को पीड़ा देने वाले! तू नहीं जानता। ☺ कल्प-2 लगे प्रभु अवतारा अर्थात् हर 5000 वर्ष में हूबहू रिपीट ड्रामा ।

**अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।**

**प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥ 4/6**

अजः अपि सन् अव्ययात्मा भूतानाम् ईश्वरः अपि सन् ।

प्रकृतिम् स्वाम् अधिष्ठाय सम्भवामि आत्ममायया ॥

अक्षय अर्थात् जिस आत्मा की शक्ति का कभी क्षय न हो, वह मैं परमपिता शिव अजन्मा होते हुए भी और प्राणियों का श्रेष्ठतम शासनकर्ता होते हुए भी, अपने गुप्त/गुह्य स्वभाव का आधार लेकर, आत्मशक्ति से दिव्य जन्म लेता हूँ।

**यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।**

**अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ 4/7**

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिः भवति भारत ।

अभ्युत्थानम् अधर्मस्य तदा आत्मानम् सृजामि अहम् ॥

हे भरतवंशी! जब-2 \*कलियुग के अन्त में सत् धर्म की हानि और इस्लामी-बौद्धी-क्रिश्चियनादि अधर्म की वृद्धि होती है, तब ही मैं स्वयं जन्म लेता हूँ। \*जैन और वैदिक सृष्टि प्रक्रिया के अनुसार, पापी कलियुग-अंत में ही धर्म की सम्पूर्ण ग्लानि होती है।

**परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।**

**धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥ 4/8**

परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम् । धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

मैं साधु-सन्तों की रक्षा के लिए, दुराचारियों के विनाश के लिए और सत्धर्म की संपूर्ण स्थापना के लिए दो युगों कलियुग और सतयुग के संधिकाल में जन्म लेता हूँ।

**जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।**

**त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥ 4/9**

जन्म कर्म च मे दिव्यम् एवम् यः वेत्ति तत्त्वतः ।

त्यक्त्वा देहम् पुनः जन्म न एति माम् एति सः अर्जुन ॥

हे सद्भाग्य का अर्जन करने वाले अर्जुन! इस प्रकार मेरे दिव्य जन्म अर्थात् विशिष्ट परकाया प्रवेश और दिव्य कार्यो को जो सत्य रूप में जान लेता है, वह शरीर को त्याग कर इस कलियुगी दुःखी संसार में फिर से जन्म नहीं लेता, मुझको प्राप्त होता है। परमेश्वर के परकाय प्रवेश के प्रमाणों के लिए देखिए 'आदीश्वर रहस्य' में 'शिव का दिव्य जन्म' नामक अध्याय-5

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।

बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥ 4/10

वीतरागभयक्रोधा मन्मया माम् उपाश्रिताः । बहवः ज्ञानतपसा पूता मद्भावम् आगताः ॥

पहले भी राग, भय और क्रोध से मुक्त, मेरे में ध्यानमग्न और मेरा ही आश्रय लेने वाले सम्पूर्ण समर्पित बहुत लोग ज्ञान और योग रूपी तपस्या से पवित्र हुए मुझ ईश्वर के ईशित्व/राजाई भाव को प्राप्त हुए हैं।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

मम वर्तमानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ 4/11

ये यथा माम् प्रपद्यन्ते तान् तथा एव भजामि अहम् ।

मम वर्त्म अनुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

जो जैसे अर्थात् जिस-2 संबंध से मुझको भजते हैं अर्थात् याद करते हैं, उनको उसी रीति सम्बन्ध से ही मैं अपनाता हूँ। हे पृथ्वीपति! लोग मेरे मार्ग का सब प्रकार से अनुकरण करते हैं।

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः ।

क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥ 4/12

काङ्क्षन्तः कर्मणाम् सिद्धिम् यजन्त इह देवताः ।

क्षिप्रम् हि मानुषे लोके सिद्धिः भवति कर्मजा ॥

इस लोक में कर्मों की सिद्धि के इच्छुक व्यक्ति देवताओं का यज्ञ-पूजनादि करते हैं; क्योंकि मनु की औलाद मनुष्य लोक में कर्मों से उत्पन्न सफलता शीघ्र होती है।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।

तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥ 4/13

चातुर्वर्ण्यम् मया सृष्टम् गुणकर्मविभागशः ।

तस्य कर्तारम् अपि माम् विद्धि अकर्तारम् अव्ययम् ॥

कल्प पहले भी मैंने गुण और कर्मों के भेद के अनुसार ब्राह्मण अर्थात् देवता, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-इन चार वर्णों के समूह को रचा था। उसका कर्ता होने पर भी अकर्ता और क्षयरहित मुझको तू जान ले।

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।

इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥ 4/14

न माम् कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।

इति माम् यः अभिजानाति कर्मभिः न स बध्यते ॥

न मुझको कर्मों का लेप लगता है, न मुझे कर्मों के फल में इच्छा है। इस रूप में जो मुझको सर्वथा जान लेता है, वह लौकिक कर्मों में नहीं बँधता।

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।

कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वं पूर्वतरं कृतम् ॥ 4/15

एवम् ज्ञात्वा कृतम् कर्म पूर्वं अपि मुमुक्षुभिः ।

कुरु कर्म एव तस्मात् त्वम् पूर्वं पूर्वतरम् कृतम् ॥

ऐसा जानकर पूर्व कल्प के मुक्ति के अभिलाषियों ने भी कर्म किया था, इसलिए तू पूर्व कल्प से भी पूर्वतर अर्थात् अनेक बार किए हुए कर्मों को ही कर। ★ कल्प की हूबहू पुनरावृत्ति होती है। ★ शास्त्रों में भी कल्प पूर्व हूबहू पुनरावृत्ति के प्रमाण अनेकशः मिल रहे हैं। जैसे रामायण में- कल्प-2 लागि प्रभु अवतारा।

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।

तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ 4/16

किम् कर्म किम् अकर्म इति कवयः अपि अत्र मोहिताः ।  
 तत् ते कर्म प्रवक्ष्यामि यत् ज्ञात्वा मोक्षसे अशुभात् ॥  
 क्या कर्म है और क्या अकर्म है?— इस प्रकार इस विषय में विद्वान लोग भी चकरा गए हैं। इससे तुझे कर्म का स्वरूप बताता हूँ, जिसे जानकर अशुभ कर्मों से मुक्त हो जाएगा।

**कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।**

**अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥ 4/17**

कर्मणः हि अपि बोद्धव्यम् बोद्धव्यम् च विकर्मणः ।

अकर्मणः च बोद्धव्यम् गहना कर्मणः गतिः ॥

कर्म को जानना चाहिए और विपरीत कर्म को भी जानना चाहिए और अकर्म भी जानने योग्य है; क्योंकि कर्म की गति गहन है।

**कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।**

**स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥ 4/18**

कर्मणि अकर्म यः पश्येत् अकर्मणि च कर्म यः ।

स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥

जो व्यक्ति सांसारिक कर्म में ज्योतिर्बिन्दु रूप आत्मास्थिति द्वारा अकर्म की बात जानता है और जो व्यक्ति सांसारिक कर्म त्याग में भी मनसा से कर्म का होना देखता है, वह मनुष्यों में समझदार है और वह योगी सम्पूर्ण श्रेष्ठ कर्मों का करने वाला है।

• बाप कर्म—विकर्म—अकर्म की गति समझाते हैं। मु.2.7.68 पृ.2 म.

**यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः ।**

**ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥ 4/19**

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः । ज्ञानाग्निदग्धकर्माणम् तम् आहुः पण्डितम् बुधाः ॥

जिस व्यक्ति के सब आरम्भ किए गए कार्य काम विकार के संकल्प से रहित हैं, उसको बुद्धिमान् लोग ज्ञान की अग्नि से अपने कर्मों को जलाने वाला पण्डित कहते हैं।

**त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।**

**कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः ॥ 4/20**

त्यक्त्वा कर्मफलासंगम् नित्यतृप्तः निराश्रयः ।

कर्मणि अभिप्रवृत्तः अपि न एव किञ्चित् करोति सः ॥

सांसारिक आश्रय से रहित, सांसारिक कर्म के फल की आसक्ति को त्यागकर सदा संतुष्ट हुआ वह व्यक्ति कर्म में अच्छी तरह लगा रहने पर भी कुछ भी नहीं करता।

**निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।**

**शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ 4/21**

निराशीः यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।

शारीरम् केवलम् कर्म कुर्वन् न आप्नोति किल्बिषम् ॥

सभी लौकिक आशाओं से रहित, अपने मन—बुद्धि को वश में करने वाला और सब प्रकार के स्वामित्व का त्याग करने वाला पुरुष केवल शारीरिक कार्य करता हुआ पाप को नहीं प्राप्त होता।

**यदृच्छलाभसन्तुष्टो द्वन्द्वतीतो विमत्सरः ।**

**समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥ 4/22**

यदृच्छलाभसंतुष्टः द्वन्द्वतीतः विमत्सरः । समः सिद्धौ असिद्धौ च कृत्वा अपि न निबध्यते ॥

संयोगवश प्राप्त हुई वस्तु से संतुष्ट रहने वाला, सुख—दुःखादि द्वन्द्वों से परे, ईर्ष्याहीन और सांसारिक सफलता—असफलता में समान रहने वाला पुरुष कर्म करके भी बँधन में नहीं पड़ता।

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।

यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥ 4/23

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः । यज्ञाय आचरतः कर्म समग्रम् प्रविलीयते ॥

आसक्ति रहित, बँधनमुक्त, ईश्वरीय ज्ञान में दृढ़तापूर्वक स्थिर हुई बुद्धि वाले और यज्ञ की सेवा भाव से आचरण करने वाले के सब कर्म पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं ।

अलौकिक यज्ञों के प्रकार :-

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।

ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ 4/24

ब्रह्म अर्पणम् ब्रह्म हविः ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।

ब्रह्म एव तेन गन्तव्यम् ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥

‘सर्वं खलु इदं ब्रह्म’ कहने वालों के अनुसार अर्पण कार्य ब्रह्म है, ब्रह्म रूप कर्ता द्वारा ब्रह्म तत्व रूपी अग्नि में अर्पित की गई हवि भी ब्रह्म है । ब्रह्म तत्व रूपी अग्नि में मनसा से समाधिस्थ उस ब्रह्म तत्व के ज्ञान द्वारा ब्रह्मलोक ही जाने योग्य स्थान है ।

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।

ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुहति ॥ 4/25

दैवम् एव अपरे यज्ञम् योगिनः पर्युपासते । ब्रह्माग्नौ अपरे यज्ञम् यज्ञेन एव उपजुहवति ॥

दूसरे योगीजन ब्रह्मा जैसे देव यज्ञ की ही उपासना करते हैं, जबकि अन्य योगी यज्ञ द्वारा रुद्र ज्ञान यज्ञ की सेवा को ही ब्रह्मतत्व की अग्नि में हवन करते हैं। ❀ अर्थात् ब्रह्मलोक की अव्यक्त स्टेज में रहकर सेवा करते हैं ।

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुहति ।

शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुहति ॥ 4/26

श्रोत्रादीनि इन्द्रियाणि अन्ये संयमाग्निषु जुहवति ।

शब्दादीन् विषयान् अन्ये इन्द्रियाग्निषु जुहवति ॥

अन्य लोग कान आदि इन्द्रियों की संयम रूपी अग्नि में आहुति देते हैं, जबकि अन्य गृहस्थजन शब्दादि विषय भोगों को अपनी इन्द्रियों की आग में आहुति डाल देते हैं ।

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।

आत्मसंयमयोगाग्नौ जुहति ज्ञानदीपिते ॥ 4/27

सर्वाणि इन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि च अपरे । आत्मसंयमयोगाग्नौ जुहवति ज्ञानदीपिते ॥

दूसरे लोग इन्द्रियों के सारे कर्मों को और श्वासोच्छ्वासादि प्राण कर्मों को ईश्वरीय ज्ञान द्वारा प्रज्वलित आत्म-संयम रूपी योगाग्नि में अर्पित करते हैं ।

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।

स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥ 4/28

द्रव्ययज्ञाः तपोयज्ञाः योगयज्ञाः तथा अपरे । स्वाध्यायज्ञानयज्ञाः च यतयः संशितव्रताः ॥

भौतिक पदार्थों का दान रूपी यज्ञ करने वाले, आत्मस्थिति की तपस्या रूपी यज्ञ करने वाले, परमात्म योग रूपी यज्ञ करने वाले तथा दूसरे अध्ययन रूपी ज्ञान यज्ञ करने वाले, ये योगीजन तीक्ष्ण व्रत वाले हैं ।

अपाने जुहति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।

प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ 4/29

अपाने जुहवति प्राणम् प्राणे अपानम् तथा अपरे । प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥

अन्य योगी अपान वायु में प्राण वायु की तथा प्राण वायु में अपान वायु की आहुति देते हैं, जबकि अन्य प्राण और अपान, दोनों की गति को रोककर प्राणायाम के ही आश्रय में रहते हैं। ॐ यहाँ प्राणवायु रूपी शुद्ध संकल्प और अपानवायु रूपी अशुद्ध संकल्पों की बात है। अर्थात् दैहिक वायु तत्व को रोकने-छोड़ने की बात नहीं है।

**अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।**

**सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ 4/30**

अपरे नियताहाराः प्राणान् प्राणेषु जुह्वति। सर्वे अपि एते यज्ञविदः यज्ञक्षपितकल्मषाः।।

अन्य उपवासादि नियमित आहार वाले प्राणों को प्राणवायु में विलीन करते हैं। इन विविध यज्ञों द्वारा कर्मों के सामान्य मैल को क्षीण करने वाले ये सब योगी भी रुद्र यज्ञ के जानकार हैं।

**यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।**

**नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ 4/31**

यज्ञशिष्टामृतभुजः यान्ति ब्रह्म सनातनम्।

न अयम् लोकः अस्ति अयज्ञस्य कुतः अन्यः कुरुसत्तम।।

परमार्थी रूपी रुद्र यज्ञ से बचे हुए अमृततुल्य को भोगने वाले अनादि ब्रह्मलोक को पहले जाते हैं; परन्तु हे कुरुओं में उत्तम! सर्वथा स्वार्थी को तो यह संसार भी सुखदायी नहीं है, फिर दूसरे लोक कैसे होंगे?

**एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।**

**कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥ 4/32**

एवम् बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणः मुखे।

कर्मजान् विद्धि तान् सर्वान् एवम् ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे।।

इसी प्रकार ब्रह्मा की वेद वाणी द्वारा अनेक भाँति के यज्ञों का विस्तार हुआ है। उन सबको कर्म से उत्पन्न हुआ जान। ऐसा जानकर तू उनसे भी मुक्त हो जाएगा।

**श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप ।**

**सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥ 4/33**

श्रेयान् द्रव्यमयात् यज्ञात् ज्ञानयज्ञः परंतप। सर्वम् कर्म अखिलम् पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।।

हे शत्रुपीडक! उपरिवर्णित भौतिक पदार्थों द्वारा किए जाने वाले यज्ञ से \*अविनाशी अश्वमेध रुद्र ज्ञान यज्ञ अधिक अच्छा है; क्योंकि हे पृथ्वीपति! अखिल विश्व के सारे कर्मकाण्ड रुद्र ज्ञान यज्ञ में समाप्त हो जाते हैं। \*राजस्व अश्वमेध अविनाशी रुद्रज्ञान यज्ञः—‘राजस्व’—स्व अर्थात् आत्मा का राज्य—सच्चा स्वराज्य प्रदान कराने वाला यज्ञ। ‘अश्वमेध’— मन रूपी अश्व प्रधान रूप से मारा जाता है जिसमें ऐसा यज्ञ। ‘अविनाशी’—भौतिक यज्ञ तो भौतिक पदार्थों की प्रधानता होने से नाशवान हैं; परंतु यह ईश्वरीय ज्ञानयज्ञ अविनाशी है; क्योंकि इसमें मन—बुद्धि रूपी अविनाशी आत्मा की ही प्रधानता है। ‘रुद्र ज्ञानयज्ञ’—रुद्र अर्थात् शिव—शंकर द्वारा ज्ञान दिए जाने के कारण इसका नाम ‘रुद्र ज्ञानयज्ञ’ है। रुद्र यज्ञ इसलिए है कि इसके अन्त में कलियुगी महाविनाश के रूप में सारे संसार की आहुति रौद्र रूप धारणकर्ता शंकर द्वारा डाली जाती है।

**तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।**

**उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ 4/34**

तत् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानम् ज्ञानिनः तत्त्वदर्शिनः।।

परम आदरपूर्वक, प्रश्नोत्तरपूर्वक और यज्ञ सेवा द्वारा उस ज्ञान—यज्ञ को तू जान ले। परम पवित्रता रूपी सार को जानने वाले ज्ञानीजन तुझको रुद्र ज्ञान यज्ञ का उपदेश करेंगे।

**यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।**

**येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥ 4/35**

यत् ज्ञात्वा न पुनः मोहम् एवम् यास्यसि पाण्डव ।  
येन भूतानि अशेषेण द्रक्ष्यसि आत्मनि अथो मयि ॥

हे पाण्डव! जिस ज्ञान को जानकर फिर से इस तरह दैहिक संबंधियों के मोहान्धकार को तू नहीं प्राप्त करेगा, तत्पश्चात् जिस रुद्रज्ञानयज्ञ द्वारा तू आत्मिक स्वरूप में समस्त प्राणियों को मेरे में अर्थात् मुझ मनुष्य सृष्टि के बीज-रूप शिवशंकर में समाए सृष्टि-वृक्ष की तरह देखेगा ।

**अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।**

**सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ॥ 4/36**

अपि चेत् असि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः । सर्वम् ज्ञानप्लवेन एव वृजिनम् संतरिष्यसि ॥

चाहे सब पापियों से भी अधिक पापी तू क्यों न हो, तो भी ज्ञान रूपी नौका से निःसन्देह सारे ही पाप-समुद्र को तू भली प्रकार तैर कर पार कर जाएगा ।

**यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।**

**ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥ 4/37**

यथा एधांसि समिद्धः अग्निः भस्मसात् कुरुते अर्जुन ।  
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा ॥

हे पुरुषार्थ का अर्जन करने वाले अर्जुन! जिस रीति जलाई हुई अग्नि ईंधन को जलाकर राख कर देती है, उसी रीति साक्षात् रुद्र रूप ईश्वर की ज्ञान रूपी अग्नि सब छोटे कर्मों को भस्म कर देती है ।

**न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।**

**तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥ 4/38**

न हि ज्ञानेन सदृशम् पवित्रम् इह विद्यते ।  
तत् स्वयम् योगसंसिद्धः कालेन आत्मनि विन्दति ॥

इस लोक में साक्षात् ईश्वरीय ज्ञान के समान पवित्र कुछ भी नहीं है । साक्षात् ज्योतिर्बिन्दु शिवबाप से योग द्वारा सम्पूर्ण सिद्धि को प्राप्त हुआ परम पुरुष समय आने पर स्वयं ही अपने अंदर उस सम्पूर्ण ज्ञान को प्राप्त कर लेता है । • प्रैक्टिकल पार्टधारी ज्योतिर्बिन्दु शिव बाप को निरंतर याद करने से ज्ञान आपे ही इमर्ज हो जाता है । चाहे बूढ़ा-बुढ़िया ही क्यों न हो । अ.वा.24.1.70 पृ.3 आ.

**श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।**

**ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥ 4/39**

श्रद्धावान् लभते ज्ञानम् तत्परः संयतेन्द्रियः ।  
ज्ञानम् लब्ध्वा पराम् शान्तिम् अचिरेण अधिगच्छति ॥

भगवान की श्रीमत् में श्रद्धा रखने वाला निरंतर प्रयत्नशील और इन्द्रियों को संपूर्ण रूप से वश में करने वाला पुरुष ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करता है । ज्ञान पाकर शीघ्र ही परम शांति पाता है ।

**अज्ञश्चाश्रद्धानश्च संशयात्मा विनश्यति ।**

**नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥ 4/40**

अज्ञः च अश्रद्धानः च संशयात्मा विनश्यति ।  
न अयम् लोकः अस्ति न परः न सुखम् संशयात्मनः ॥

मूर्ख और श्रद्धाहीन तथा संशय के स्वभाव वाला पुरुष संपूर्ण आत्मस्थिति से नष्ट हो जाता है । संशयालु व्यक्ति को न यह संसार है, न परलोक रूपी स्वर्ग है और न सांसारिक सुख ही है ।

**योगसन्न्यस्तकर्माणं ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम् ।**

**आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ॥ 4/41**

योगसन्न्यस्तकर्माणम् ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम् । आत्मवन्तम् न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ॥

हे ज्ञानधनजयी अर्जुन! सहज राजयोग द्वारा कर्मबन्धन का सम्पूर्ण त्याग करने वाले और ईश्वरीय ज्ञान द्वारा संशय का सम्पूर्ण छेदन करने वाले ज्योतिर्बिन्दु स्वरूप आत्मा की स्मृति में टिके पुरुष को कर्मबंधन नहीं लगते;

**तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ।**

**छित्त्वेन संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥ 4/42**

तस्मात् अज्ञानसम्भूतम् हृत्स्थम् ज्ञानासिना आत्मनः ।

छित्त्वा एनम् संशयम् योगम् आतिष्ठ उत्तिष्ठ भारत ॥

इसलिए हे भरतवंशी अर्जुन! अज्ञान से उत्पन्न हुए हृदय में स्थित इस संशय को आत्मा की ज्ञानकटारी से काटकर योग में जुट जा और उठ खड़ा हो।

## अध्याय-5

**अर्जुन उवाच:- सन्न्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।**

**यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ 5/1**

सन्न्यासम् कर्मणाम् कृष्ण पुनः योगम् च शंससि ।

यत् श्रेयः एतयोः एकम् तत् मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥

हे ज्ञान मुरली द्वारा आत्माओं को आकर्षित करने वाले परमपिता शिव! लौकिक कर्मों के समुचित त्याग की और फिर कभी कर्मयोग की आप प्रशंसा करते हो। इन दोनों में से जो अधिक श्रेष्ठ हो उस एक को निश्चयपूर्वक मुझे बताइए।

**श्रीभगवानुवाच:- सन्न्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।**

**तयोस्तु कर्मसन्न्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥ 5/2**

सन्न्यासः कर्मयोगः च निःश्रेयसकरौ उभौ । तयोः तु कर्मसन्न्यासात् कर्मयोगः विशिष्यते ॥

लौकिक कर्म का समुचित त्याग करते हुए योग और लौकिक कर्म सेवा करते हुए भी परमात्मा से योग— ये दोनों परमकल्याणकारी हैं; किन्तु उन दोनों में लौकिक कर्मों के सम्पूर्ण त्याग रूपी सन्न्यासयोग से लौकिक कर्म करते हुए परमात्मा की याद रूपी कर्मयोग विशेष अच्छा है।

**ज्ञेयः स नित्यसन्न्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति ।**

**निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥ 5/3**

ज्ञेयः स नित्यसन्न्यासी यः न द्वेष्टि न काङ्क्षति ।

निर्द्वन्द्वः हि महाबाहो सुखम् बन्धात् प्रमुच्यते ॥

हे सहयोगी रूपी दीर्घ भुजा वाले! जो न द्वेष करता है, न कोई लौकिक इच्छा करता है, वही लौकिक कर्मों का सदा त्याग करने वाला सन्न्यासयोगी जाना जाता है; क्योंकि राग-द्वेष आदि द्वन्द्वों से रहित पुरुष कर्मबंधन से सुखपूर्वक छूट जाता है।

**\*साङ्ख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।**

**एकमप्यास्थितः सम्यग्भयोर्विन्दते फलम् ॥ 5/4**

साङ्ख्ययोगौ पृथक् बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।

एकम् अपि आस्थितः सम्यक् उभयोः विन्दते फलम् ॥

केवल ज्ञान और कर्मयोग—ये दोनों अलग हैं, ऐसा बाल बुद्धि अर्थात् कच्ची बुद्धि वाले कहते हैं, पण्डितजन नहीं कहते। एक का भी भली प्रकार आसरा लेने वाला दोनों का फल पाता है। \*संख्या सं+आख्या=संपूर्ण आख्या अर्थात् विचार और उससे उत्पन्न होने वाला ज्ञान=सांख्य।

**यत्साङ्ख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।**

**एकं साङ्ख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥ 5/5**

यत् सांख्यैः प्राप्यते स्थानम् तत् योगैः अपि गम्यते ।



एकम् सांख्यम् च योगम् च यः पश्यति स पश्यति ॥

ज्ञान द्वारा जो पद मिलता है, वही पद कर्मयोग द्वारा भी प्राप्त होता है। अतः ज्ञानयोग और कर्मयोग को जो एक देखता है, वही सत्य देखता है।

**सन्न्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।**

**योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ॥ 5/6**

सन्न्यासः तु महाबाहो दुःखम् आप्तुम् अयोगतः ।

योगयुक्तः मुनिः ब्रह्म नचिरेण अधिगच्छति ॥

हे महान सहयोगियों रूपी दीर्घबाहु! सन्न्यास तो कर्मयोग बिना, लौकिक कर्मों का अनुभव किए बिना दुःखपूर्वक प्राप्त होता है। परमात्मा से लगन होगी तो ही लौकिक कर्मों का त्याग कर सकेंगे। अयोगी अर्थात् भोगी को ज्ञान नहीं मिलता। परमात्मा की याद की लगन में लगा हुआ मननशील ज्ञानी ब्रह्मलोक को शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है। \* प्रायः ऐसा समझा जाता है कि जिन सांसारिक कार्यों को सर्वथा त्यागकर, केवल ज्ञान की अलौकिक सेवा में अपना जीवन अर्पण कर दिया है, वे अधिक श्रेष्ठ हैं; परंतु गीता में इस बात का खण्डन किया गया है और दूसरे श्लोक में तो सुगमता की दृष्टि से सन्न्यासयोग से कर्मयोग को ही श्रेष्ठ बताया है। यद्यपि ये दोनों ही मित्र नहीं हैं, अपितु प्राप्ति की दृष्टि से दोनों समान हैं। ऐसा पाँचवें श्लोक में भी बताया गया है।

**योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।**

**सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ 5/7**

योगयुक्तः विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः । सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन् अपि न लिप्यते ॥

योगयुक्त, विशेष रूप से मनसा तक शुद्ध हुआ, मन-बुद्धि को भी जीतने वाला, इन्द्रियजीत और सब प्राणियों में आत्मभाव रखने वाला पुरुष कर्म करता हुआ भी कर्म में आसक्त नहीं होता।

**नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।**

**पश्यन् शृण्वन्स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन् गच्छन् स्वपन् श्वसन् ॥ 5/8**

**प्रलपन् विसृजन् गृह्णन् उन्मिषन् निमिषन् अपि ।**

**इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥ 5/9**

न एव किञ्चित् करोमि इति युक्तः मन्येत तत्त्ववित् ।

पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन् गच्छन् स्वपन् श्वसन् ॥

प्रलपन् विसृजन् गृह्णन् उन्मिषन् निमिषन् अपि ।

इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥

परमात्मा की याद की लगन में लगा हुआ सारभूत को जानने वाला-ज्ञानी जिह्वा आदि इन्द्रियाँ भोजन आदि विषयों में स्वाभाविक रीति से लगी हुई हैं- ऐसा निश्चय करके देखते, सुनते, छूते, सूँघते, खाते, जाते, सोते, श्वाँस लेते, बोलते, मल-मूत्र त्याग करते, लेते, आँखें खोलते और मीचते हुए भी, कुछ भी नहीं करता हूँ, इस तरह हल्केपन का अनुभव करता है। {अर्थात् सब कुछ मेरे से कराने वाला साक्षात् ईश्वर है।}

**ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।**

**लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ 5/10**

◆ ब्रह्मणि आधाय कर्माणि संगम् त्यक्त्वा करोति यः ।

लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रम् इव अम्भसा ॥

जो योगी बुद्धि द्वारा ब्रह्मलोक का आधार लेकर अर्थात् अव्यक्त होकर और आसक्ति का त्याग करके इन कर्मों को करता है, वह पानी से कमल पत्र की तरह पाप से लिप्त नहीं होता। ◆ गीता 5/15 के अनुसार, परमात्मा किसी के पाप-पुण्यों को ग्रहण नहीं करता। अतः यहाँ कर्मों को परमात्मा में अर्पित करने का अर्थ नहीं लगाया जा सकता।

**कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ।**

**योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥ 5/11**

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैः इन्द्रियैः अपि ।  
योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगम् त्यक्त्वा आत्मशुद्धये ॥

योगीजन शरीर से, मन द्वारा, बुद्धि द्वारा और केवल इन्द्रियों द्वारा भी आत्मा की शुद्धि के लिए, आसक्ति को त्यागकर कर्म करते हैं।

**युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।**

**अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥ 5/12**

युक्तः कर्मफलम् त्यक्त्वा शांतिम् आप्नोति नैष्ठिकीम् ।  
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तः निबध्यते ॥

योगी कर्मों की फलासक्ति को त्याग कर निश्चल शांति को प्राप्त करता है; परंतु अयोगी अर्थात् जो परमात्मा की याद में कर्म नहीं करता, वह सांसारिक कामना के कारण कर्म के फल में आसक्त हुआ कर्म बंधन में अत्यन्त बँध जाता है।

**सर्वकर्माणि मनसा सन्न्यस्यास्ते सुखं वशी ।**

**नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ 5/13**

सर्वकर्माणि मनसा सन्न्यस्य आस्ते सुखम् वशी ।  
नवद्वारे पुरे देही न एव कुर्वन् न कारयन् ॥

मन सहित इन्द्रियों को वश में करने वाला आत्मा सब कर्मों को मन से, न कि स्थूल रूप से, सम्पूर्ण त्याग कर नौ द्वार वाले शरीर रूपी नगर में मानों न करता हुआ और न कराता हुआ ही सुख से रहता है।

**न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।**

**न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ 5/14**

न कर्तृत्वम् न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः । न कर्मफलसंयोगम् स्वभावः तु प्रवर्तते ॥

परमेश्वर संसार के न कर्तापने का, न कर्मों का और न कर्मों का उनके फलों के साथ संयोग विधान करता है; किंतु जड़ जंगम सृष्टि का अनादि निश्चित स्वभाव स्वतः ही प्रवर्तन करता है। परमात्मा सब कुछ नहीं करता, बल्कि अनादि निश्चित 5000 वर्षीय द्रामाप्लेन अनुसार स्वभावतः सारे कार्य होते हैं।

**नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।**

**अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥ 5/15**

न आदत्ते कस्यचित् पापम् न च एव सुकृतम् विभुः ।  
अज्ञानेन आवृतम् ज्ञानम् तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥

परमात्मा किसी के न पाप को न पुण्य को ही ग्रहण करता है। सर्वव्यापी के अज्ञान द्वारा ज्ञान ढका हुआ है, जिससे प्राणी मोहित हो रहे हैं;

**ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।**

**तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥ 5/16**

ज्ञानेन तु तत् अज्ञानम् येषाम् नाशितम् आत्मनः ।  
तेषाम् आदित्यवत् ज्ञानम् प्रकाशयति तत्परम् ॥

किंतु एकव्यापी के ज्ञान द्वारा जिनका आत्मा सम्बंधी वह अज्ञान नष्ट हो गया है, उनका वह ज्ञान परमेश्वर को सूर्य की तरह प्रकाशित करता है।

**तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।**

**गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ 5/17**

तद्बुद्धयः तदात्मानः तन्निष्ठाः तत्परायणाः । गच्छन्ति अपुनरावृत्तिम् ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥

उस एकव्यापी परमेश्वर में ही निश्चय बुद्धि वाले, उसी में अपना मन लगाने वाले, उसी में निष्ठावान, उसे ही परम आधार मानने वाले और ईश्वरीय ज्ञान जल द्वारा जिनके पाप धुल गए हैं—ऐसे पुरुष पुनः इस दुःखी लोक कलियुग में नहीं आते।

**विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।**

**शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥ 5/18**

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि । शुनि च एव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥

विद्या और विनयशील सत्वगुणी ब्राह्मण में, गाय—बैल जैसे रजोगुणी मनुष्य में, हाथी और कुत्ते जैसे तमोगुणी पुरुष में और कामी कुत्ते को भी पकाने वाले चाण्डाल जैसे अत्यन्त तामसी पुरुष में आत्माभिमानी पण्डितजन ही समान आत्मिक दृष्टि वाले होते हैं।

**इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।**

**निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥ 5/19**

इह एव तैः जितः सर्गः येषाम् साम्ये स्थितम् मनः ।

निर्दोषम् हि समम् ब्रह्म तस्मात् ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥

जिनका मन एक शिव बाप की संतान आत्मा—2 भाई—2 की समानता में स्थिर है, उन्होंने संसार में ही जन्म—मृत्यु रूप संसार को जीत लिया है; क्योंकि ब्रह्मतत्त्व दोष—पापरहित और समान है; इसलिए वे ब्रह्मतत्त्व में ही स्थिर हैं। तुम बच्चे इस संसार में ही ब्रह्मलोक को उतार लेंगे।

**न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।**

**स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥ 5/20**

न प्रहृष्येत् प्रियम् प्राप्य न उद्विजेत् प्राप्य च अप्रियम् ।

स्थिरबुद्धिः असम्मूढः ब्रह्मवित् ब्रह्मणि स्थितः ॥

प्रिय वस्तु को पाकर हर्षित नहीं होना चाहिए और अप्रिय वस्तु को पाकर दुःखी नहीं होना चाहिए। स्थिर बुद्धि वाला, मोहरहित और ब्रह्मतत्त्व का जानकार पुरुष ब्रह्मतत्त्व में ही स्थित है।

**बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।**

**स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥ 5/21**

बाह्यस्पर्शेषु असक्तात्मा विन्दति आत्मनि यत् सुखम् ।

स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखम् अक्षयम् अश्नुते ॥

बाहरी विषय भोगों में आसक्ति से रहित पुरुष, आत्मा में जो अतीन्द्रिय सुख पाता है, वह पुरुष परमब्रह्म से योगयुक्त हुआ अखूट अतीन्द्रिय सुख भोगता है।

**ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।**

**आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥ 5/22**

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते । आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥

जो इन्द्रियों के विषयों से जन्म लेने वाले भोग हैं, वे ही दुःखों को उत्पन्न करने वाले हैं और आदि—अंत वाले अर्थात् क्षणिक ही हैं। पवित्र माता गुरु कुन्ती माता के पुत्र! बुद्धिमान् उन विषयों में रमण नहीं करते।

**शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।**

**कामक्रोधोद्धवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥ 5/23**

शक्नोति इह एव यः सोढुम् प्राक् शरीरविमोक्षणात् ।

कामक्रोधोद्धवं वेगम् स युक्तः स सुखी नरः ॥

इस लोक में ही जो पुरुष शरीर छूटने से पहले काम—क्रोध से उत्पन्न हुए आवेग को सहन कर सकता है, वह मनुष्य योगी है, वही सुखी है।

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।

स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥ 5/24

यः अन्तःसुखः अन्तरारामः तथा अन्तर्ज्योतिः एव यः ।

स योगी ब्रह्मनिर्वाणम् ब्रह्मभूतः अधिगच्छति ॥

जो पुरुष अन्तरात्मा में सुखी है, अन्तरात्मा में ही आनन्दित है, इसी तरह जिसमें ज्योतिर्बिंदु रूप आत्मज्योति ही प्रकाशित है; ब्रह्मलोक में स्थित हुआ वह योगी परमब्रह्म के निर्वाण पद को प्राप्त कर लेता है ।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।

छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥ 5/25

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणम् ऋषयः क्षीणकल्मषाः । छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥

पापों को क्षीण करने वाले, द्विविधा अर्थात् संशय का छेदन करने वाले, मन-बुद्धि को वश में करने वाले और सब प्राणियों के हित में रत अर्थात् आनन्द लेने वाले ऋषिजन ब्रह्मतत्त्व रूप निर्वाण पद को पाते हैं ।

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।

अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥ 5/26

कामक्रोधवियुक्तानाम् यतीनाम् यतचेतसाम् । अभितः ब्रह्मनिर्वाणम् वर्तते विदितात्मनाम् ॥

काम-क्रोध से रहित, संयमित मन-बुद्धि वालों का और ज्योतिर्बिंदु आत्म स्वरूप को भली-भाँति जानने वाले यतियों का ब्रह्म रूप निर्वाण पद दोनों ओर होता है । 'दोनों ओर' अर्थात् परलोक और इस लोक में भी वे ब्रह्मलोक की शांति का अनुभव करते हैं ।

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।

प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥ 5/27

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्माक्षपरायणः ।

विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥ 5/28

स्पर्शान् कृत्वा बहिः बाह्यान् चक्षुः च एव अन्तरे भ्रुवोः ।

प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥

यतेन्द्रियमनोबुद्धिः मुनिः मोक्षपरायणः । विगतेच्छाभयक्रोधः यः सदा मुक्त एव सः ॥

बाहर के इन्द्रिय विषयों को बाहर ही करके और मन-बुद्धि रूपी ज्योतिर्बिंदु आत्म नेत्र को दोनों भ्रुकुटि के बीच में नासिका से संचार करने वाले प्राण और अपान वायु को समान करके अर्थात् स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास लेते हुए, इन्द्रिय, मन और बुद्धि को वश करने वाला, दुःखों से मुक्ति को परमगति मानने वाला, इच्छा, भय और क्रोध से रहित जो मुनि होता है, वह सदा मुक्त ही है ।

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥ 5/29

भोक्तारम् यज्ञतपसाम् सर्वलोकमहेश्वरम् ।

सुहृदम् सर्वभूतानाम् ज्ञात्वा माम् शान्तिम् ऋच्छति ॥

सब प्रकार की यज्ञ सेवा और आत्मस्थिति रूप तपस्या का भोग स्वीकार करने वाले और सब प्राणियों के मित्रस्वरूप मुझ सर्व लोकों के महान ईश्वर को जानकर शांति को प्राप्त करता है ।

## अध्याय-6

श्रीभगवानुवाच:- अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।

### स सन्यासी च योगी च न निरग्निराक्रियः ॥ 6/1

अनाश्रितः कर्मफलम् कार्यम् कर्म करोति यः।

स संन्यासी च योगी च न निरग्निराक्रियः ॥

जो कर्मों के फल का आश्रय न लेकर करने योग्य कर्म करता है, वह सन्यास योगी और कर्मयोगी है; परंतु ज्ञान-योग रूपी अग्नि से रहित नहीं है और निष्क्रिय नहीं है।

### यं सन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।

#### न ह्यसन्यस्तसङ्कल्पो योगी भवति कश्चन ॥ 6/2

यम् संन्यासम् इति प्राहुः योगम् तम् विद्धि पाण्डव ।

न हि असंन्यस्तसंकल्पः योगी भवति कश्चन ॥

हे पाण्डव! जिसको लौकिक कर्मों का समुचित त्याग रूप सन्यास ऐसा कहा जाता है, उसको कर्मयोग समझो; क्योंकि लौकिक संकल्पों का समुचित त्याग न करने वाला कोई भी कर्मयोगी नहीं होता। \*लौकिक संकल्पों का त्याग करने वाला कर्मयोगी भी, लौकिक कर्मों का बुद्धि से त्याग करने वाले ज्ञानी की तरह ही है; परंतु लौकिक कर्मों को त्यागने वाले ज्ञानी ने यदि सांसारिक संकल्पों-आशाओं को नहीं त्यागा, तो वह योगी नहीं कहा जाएगा।

### आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।

#### योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ 6/3

आरुरुक्षोः मुनेः योगम् कर्म कारणम् उच्यते ।

योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणम् उच्यते ॥

योगयुक्त स्थिति में चढ़ने की इच्छा वाले मुनि के लिए अलौकिक कर्म ही उस स्थिति की प्राप्ति में कारण अर्थात् साधन कहा जाता है और उस योगयुक्त अवस्था को चढ़े हुए व्यक्ति के टिकाऊपने में कर्म करते हुए भी, चित्त की उपरामता ही कारण कही जाती है; †लौकिक कर्मों को भी अलौकिक समझ कर करने से ऊँची स्थिति बनती है, जिसे उपराम रहकर स्थायी बनाया जा सकता है।

### यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।

#### सर्वसङ्कल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥ 6/4

यदा हि न इन्द्रियार्थेषु न कर्मसु अनुषज्जते । सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढः तदा उच्यते ॥

क्योंकि जब सब लौकिक संकल्पों का सम्यक् रीति त्याग करने वाला ज्ञानी न इन्द्रियों के रूप रस आदि विषयों में और न कर्मों में आसक्त होता है, तब योगयुक्त अवस्था को चढ़ा हुआ कहा जाता है। ▶ किसी कर्म में आसक्त नहीं होना है।

### उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।

#### आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ 6/5

उद्धरेत् आत्मना आत्मानम् न आत्मानम् अवसादयेत् ।

आत्मा एव हि आत्मनः बंधुः आत्मा एव रिपुः आत्मनः ॥

अपने मन-बुद्धि के द्वारा सूक्ष्म ज्योतिर्बिंदु आत्मा को उत्+हरेत्; ऊर्ध्वलोक (ब्रह्मलोक) में ले जाना चाहिए। आत्मा को अधोगति में न पहुँचने दे; क्योंकि आत्मा ही अपना मित्र है और आत्मा ही अपना शत्रु है। ▶ सदैव परमधाम रूपी घर को याद करना है, कलियुगी अधोलोक को याद नहीं करना है। • जीवात्मा अपना ही मित्र है, अपना ही शत्रु है। मु.ता.21.3.67 पृ.3

### बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।

#### अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥ 6/6

बंधुः आत्मा आत्मनः तस्य येन आत्मा एव आत्मना जितः ।

अनात्मनः तु शत्रुत्वे वर्तेत आत्मा एव शत्रुवत् ॥

जिसने अपने मन-बुद्धि के द्वारा ज्योतिर्बिंदु आत्मा को जीता अर्थात् पाया है, उसकी आत्मा ही अपना मित्र है; किंतु आत्मज्ञानरहित देहाभिमानी का मन-बुद्धि रूप आत्मा ही शत्रु की तरह शत्रुता करने में तत्पर रहता है।

**जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।**

**शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥ 6/7**

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः। शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः।।

आत्मजयी परम शान्त पुरुष की हीरो पार्टधारी आत्मा सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख में तथा मान-अपमान में स्थिर-अडोल रहती है।

**ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।**

**युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥ 6/8**

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थः विजितेन्द्रियः। युक्त इति उच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः।।

ईश्वरीय ज्ञान और ध्यान योग के विशेष ज्ञान से संतुष्ट हुई आत्मा वाला, ब्रह्मलोक रूपी पर्वतीय शिखर पर स्थिर रहने वाला, इन्द्रियजयी और मिट्टी, पत्थर, स्वर्ण आदि में समान रूप से अनासक्त योगी योगनिष्ठ है, ऐसा कहा जाता है।

**सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।**

**साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥ 6/9**

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु। साधुषु अपि च पापेषु समबुद्धिः विशिष्यते।।

स्नेही, मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेषीजनों और बंधुबांधवों में, साधु पुरुषों और पापियों में भी आत्म रूप से समान भाव रखने वाला विशेष अच्छा माना जाता है।

**योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।**

**एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥ 6/10**

योगी युञ्जीत सततम् आत्मानम् रहसि स्थितः। एकाकी यतचित्तात्मा निराशीः अपरिग्रहः।।

इन्द्रियों सहित मन-बुद्धि को वश में करने वाला, लौकिक आशाओं से रहित और लौकिक हेतु से संग्रहवृत्ति का त्याग करने वाला योगी पुरुष अकेला एकांत स्थान में स्थित हुआ मन-बुद्धि स्वरूप ज्योतिर्बिंदु आत्मा को निरन्तर परमात्मा से जोड़े।

**शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।**

**नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ 6/11**

**तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।**

**उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ 6/12**

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरम् आसनम् आत्मनः।

न अत्युच्छ्रितम् न अतिनीचम् चैलाजिनकुशोत्तरम्।।

तत्र एकाग्रम् मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।

उपविश्य आसने युञ्ज्यात् योगम् आत्मविशुद्धये।।

पवित्र स्थान में, कुशा घास पर मृगचर्म डालकर, उस पर वस्त्र बिछाकर, न अति नीचा न अति ऊँचा अपना स्थिर आसन जमाकर, उस आसन पर बैठकर तथा मन को एकाग्र करके मन-बुद्धि और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में करने वाला योगी आत्मा की विशेष शुद्धि के लिए परमात्मा से लगन लगाए।

**समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।**

**सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ 6/13**

**प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।**

**मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥ 6/14**

समम् कायशिरोग्रीवम् धारयन् अचलम् स्थिरः ।  
 संप्रेक्ष्य नासिकाग्रम् स्वम् दिशः च अनवलोकयन् ॥  
 प्रशान्तात्मा विगतभीः ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।  
 मनः संयम्य मच्चित्तः युक्त आसीत् मत्परः ॥

स्थिर हुआ योगी शरीर, गर्दन और सिर को एक सीध में अडोल रखते हुए और अपनी नाक के सामने सम्यक् रीति देखते हुए अर्थात् आँखें खुली रखकर, इधर-उधर न देखते हुए, शान्तचित्त हुआ, भय रहित हुआ और ब्रह्मचर्य व्रत में स्थिर हुआ, मन को वश में करके मुझ चैतन्य ज्योतिर्लिंग शिव में चित्त लगाकर, मेरे परायण हुआ योगयुक्त बना रहे।

**युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।**

**शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ 6/15**

युंजन् एवम् सदा आत्मानम् योगी नियतमानसः ।  
 शान्तिम् निर्वाणपरमाम् मत्संस्थाम् अधिगच्छति ॥

मन को संयत रखने वाला योगी इस प्रकार निरंतर ज्योतिर्बिंदु आत्मा को चैतन्य ज्योतिर्लिंग परमपिता शिव में जोड़ता हुआ मुझ परमात्मा में स्थित निर्वाणधाम की परम शान्ति को प्राप्त कर लेता है।

**नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।**

**न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥ 6/16**

न अति अश्नतः तु योगः अस्ति न च एकान्तम् अनश्नतः ।  
 न च अति स्वप्नशीलस्य जाग्रतः न एव च अर्जुन ॥

हे सद्भाग्य का अर्जन करने वाले अर्जुन! न तो अत्यधिक खाने वाले का और न बिल्कुल उपवास रखने वाले का योग लगता है तथा न अधिक सोने वाले का और न बिल्कुल जागने वाले का ही योग लगता है। \* भोजन-निद्रा आदि सभी बातों के संबंध में सहज राजयोगी को किसी तरह की अति अर्थात् हठ नहीं करनी चाहिए।

**युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।**

**युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ 6/17**

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु । युक्तस्वप्नावबोधस्य योगः भवति दुःखहा ॥

आहार-विहार में नियमित होने वाले का, कर्मों में युक्तियुक्त चेष्टा करने वाले का और नियमित निद्रा तथा जागरण करने वाले का योग दुःखों को हरने वाला होता है। \* सुबह से शाम तक की सारी दिनचर्या नियमित होनी चाहिए।

**यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।**

**निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥ 6/18**

यदा विनियतम् चित्तम् आत्मनि एव अवतिष्ठते ।  
 निःस्पृहः सर्वकामेभ्यः युक्त इति उच्यते तदा ॥

जब विशेष रूप से नितांत संयम में रखा गया मन-बुद्धि रूप चित्त ज्योतिर्बिंदु आत्मरूप में ही स्थिर हो जाता है, तब सब कामनाओं से निःस्पृह हुआ 'योगयुक्त', ऐसा कहा जाता है।

**यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।**

**योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥ 6/19**

यथा दीपः निवातस्थः न इंगते सा उपमा स्मृता ।  
 योगिनः यतचित्तस्य युंजतः योगम् आत्मनः ॥

जैसे वायुहीन स्थान में स्थित दीपक हिलता नहीं है, वैसे ही वशीभूत मन-बुद्धि वाली आत्मा का लगन या सम्बंध परमात्मा से जोड़ते हुए, योगी की वह दीपक वाली उपमा स्मरण की जाती है। अर्थात् योगयुक्त आत्मा के नेत्र निश्चल-एकटिक हो जाते हैं।

**यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।**

**यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥ 6/20**

यत्र उपरमते चित्तम् निरुद्धम् योगसेवया ।

यत्र च एव आत्मना आत्मानम् पश्यन् आत्मनि तुष्यति ॥

जिस अवस्था में योगाभ्यास के द्वारा नितान्त वशीभूत चित्त उपराम हो जाता है और जिस दशा में योगी अपने मन-बुद्धि द्वारा सूक्ष्म ज्योतिर्बिंदु आत्मा को देखता हुआ आत्मा में ही आनन्दित होता है;

**सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।**

**वेत्ति यत्र न चैवार्यं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥ 6/21**

सुखम् आत्यन्तिकम् यत् तत् बुद्धिग्राह्यम् अतीन्द्रियम् ।

वेत्ति यत्र न च एव अयम् स्थितः चलति तत्त्वतः ॥

बुद्धि द्वारा ग्रहण करने योग्य जो इन्द्रियों से परे का उत्कृष्टतम सुख है, उसको यह योगी जिस अवस्था में जानता है और स्थिर हुआ ज्योतिर्बिंदु आत्मस्वरूप से कभी विचलित नहीं होता;

**यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।**

**यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥ 6/22**

यम् लब्ध्वा च अपरम् लाभम् मन्यते न अधिकम् ततः ।

यस्मिन् स्थितः न दुःखेन गुरुणा अपि विचाल्यते ॥

उसी तरह जिस अतीन्द्रिय सुख को पाकर उससे दूसरे लाभ को अधिक नहीं मानता, जिसमें स्थित हुआ महान दुःख से भी तनिक भी विचलित नहीं होता;

**तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।**

**स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥ 6/23**

तम् विद्यात् दुःखसंयोगवियोगम् योगसंज्ञितम् ।

स निश्चयेन योक्तव्यः योगः अनिर्विण्णचेतसा ॥

दुःखों की प्राप्ति से दूर करने वाले उस अतीन्द्रिय सुख को योग के नाम से जानना चाहिए। दुःखरहित अर्थात् हर्षित चित्त से निश्चयपूर्वक वह योग लगाना चाहिए।

**संकल्पप्रभवान्कामास्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।**

**मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥ 6/24**

संकल्पप्रभवान् कामान् त्यक्त्वा सर्वान् अशेषतः ।

मनसा एव इन्द्रियग्रामम् विनियम्य समन्ततः ॥

संकल्प से उत्पन्न हुई सब सांसारिक कामनाओं को सम्पूर्णतया त्यागकर मन द्वारा ही इन्द्रियों के समूह को चारों ओर से भली भाँति नियमित करके,

**शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।**

**आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥ 6/25**

शनैः शनैः उपरमेत् बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।

आत्मसंस्थम् मनः कृत्वा न किञ्चित् अपि चिन्तयेत् ॥

धीरे-2 धैर्य ग्रहण करने वाली बुद्धि के द्वारा उपराम हो जाए और मन को बिन्दु रूप आत्मा में स्थिर करके सिवाय ज्योतिर्बिंदु आत्मा के कुछ भी चिंतन न करे।

**यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।**

**ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ 6/26**

यतः यतः निश्चरति मनः चञ्चलम् अस्थिरम् ।

ततः ततः नियम्य एतत् आत्मनि एव वशम् नयेत् ॥



अस्थिर और चंचल मन जहाँ-2 से चलायमान हो, वहाँ-2 से इस मन को नियमित करके स्तारस्वरूप आत्मा के ही वश में ले आए;

**प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।**

**उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ 6/27**

प्रशांतमनसम् हि एनम् योगिनम् सुखम् उत्तमम् ।

उपैति शान्तरजसम् ब्रह्मभूतम् अकल्मषम् ॥

क्योंकि भली-भाँति शान्त हुए मन वाले और शांत हुए रजोगुण वाले इस योगी को परमब्रह्म से उत्पन्न हुआ दोषरहित उत्तम अतीन्द्रिय सुख प्राप्त होता है ।

**युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।**

**सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥ 6/28**

युजन् एवम् सदा आत्मानम् योगी विगतकल्मषः ।

सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शम् अत्यन्तम् सुखम् अश्नुते ॥

इस प्रकार सदैव ज्योतिर्बिंदु आत्मा को ज्योतिर्लिंग रूप परमात्मा से जोड़ता हुआ पापरहित योगी सुखपूर्वक परमब्रह्म से भली-भाँति स्पर्श वाले सीमाहीन अतीन्द्रिय सुख को भोगता है ।

**सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।**

**ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ 6/29**

सर्वभूतस्थम् आत्मानम् सर्वभूतानि च आत्मनि । ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥

परमात्मा की लगन में लगा हुआ पुरुष सब जगह समान आत्मिक दृष्टि वाला होकर, सब प्राणियों में स्थित ज्योतिर्बिंदु आत्मा को अथवा सब प्राणियों को ज्योतिर्बिंदु आत्मस्वरूप में देखता है ।

**यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।**

**तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ 6/30**

यः माम् पश्यति सर्वत्र सर्वम् च मयि पश्यति ।

तस्य अहम् न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥

जो प्रेमी, प्रेमिका की भाँति सब जगह मुझे देखता है और बीज में वृक्ष की भाँति मेरे में सबको देखता है, मैं उससे कभी दूर नहीं होता और वह मेरे से कभी अदृश्य नहीं होता ।

**सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।**

**सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥ 6/31**

सर्वभूतस्थितम् यः माम् भजति एकत्वम् आस्थितः ।

सर्वथा वर्तमानः अपि स योगी मयि वर्तते ॥

एक परमात्मा का ही आश्रय लेने वाला जो योगी सब प्राणियों में मेरी याद की शक्ति रूप से स्थित मुझ ज्योतिर्लिंग परमेश्वर को भजता है, वह योगी सब प्रकार से व्यवहार करता हुआ भी मेरे में रहता है ।

**आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।**

**सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥ 6/32**

आत्मौपम्येन सर्वत्र समम् पश्यति यः अर्जुन ।

सुखम् वा यदि वा दुःखम् स योगी परमः मतः ॥

हे सौभाग्य का अर्जन करने वाले अर्जुन! जो योगी आत्मभाव से अर्थात् अपनी ही तरह सब प्राणियों में सुख को अथवा दुःख को समान देखता है, वह योगी सम्पूर्ण माना जाता है ।

**अर्जुनोवाचः- योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।**

**एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ॥ 6/33**

यः अयम् योगः त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।

एतस्य अहम् न पश्यामि चंचलत्वात् स्थितिम् स्थिराम् ।।

हे काम विकार रूपी मीठे दैत्य को मारने वाले भगवान शिव! आपने आत्मिक स्वरूप की समानता द्वारा जो यह योग कहा है, उसके लिए मन की चंचलता के कारण कोई स्थिर आधार मुझे दिखाई नहीं देता।

**चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।**

**तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ 6/34**

चंचलम् हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवत् दृढम् ।

तस्य अहम् निग्रहम् मन्ये वायोः इव सुदुष्करम् ।।

हे आत्मा रूपी गोपियों को आकर्षित करने वाले परमपिता शिव! मन चंचल है, इन्द्रियों को मथने वाला है, बलवान है और हठी है। इससे मैं उसका रोकना वायु के समान अति कठिन मानता हूँ।

**श्रीभगवानुवाच:— असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।**

**अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ 6/35**

असंशयम् महाबाहो मनः दुर्निग्रहम् चलम् । अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।।

हे दीर्घबाहु! निःसंदेह चंचल मन को वश में करना कठिन है; किन्तु हे कुन्ती माता के पुत्र! योग के अभ्यास द्वारा और पुरानी कलियुगी दुनिया के वैराग्य द्वारा वश में किया जाता है।

**असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।**

**वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥ 6/36**

असंयतात्मना योगः दुष्प्राप इति मे मतिः । वश्यात्मना तु यतता शक्यः अवाप्तुम् उपायतः ।।

असंयत मन वाले के लिए योग की प्राप्ति कठिन है, ऐसा मैं मानता हूँ; किन्तु प्रयत्नवान वशीभूत मन वाले योगी द्वारा युक्तिपूर्वक प्राप्त किया जा सकता है।

**अर्जुनोवाच:— अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।**

**अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥ 6/37**

अयतिः श्रद्धया उपेतः योगात् चलितमानसः ।

अप्राप्य योगसंसिद्धिम् काम् गतिम् कृष्ण गच्छति ।।

हे आकर्षणमूर्त! श्रद्धा से युक्त; किन्तु योग से विचलित हुए मन वाला योगभ्रष्ट मनुष्य योग की सफलता को न पाकर किस गति को जाता है?

**कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।**

**अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥ 6/38**

कच्चित् न उभयविभ्रष्टः छिन्नाभ्रम् इव नश्यति । अप्रतिष्ठः महाबाहो विमूढः ब्रह्मणः पथि ।।

हे सहयोगियों रूपी विशाल भुजाओं वाले भगवान! ब्रह्मलोक के मार्ग में भूला हुआ स्थानभ्रष्ट योगी सन्यास और कर्मयोग दोनों से भ्रष्ट हुआ फटे हुए बादल की तरह कहीं नष्ट तो नहीं हो जाता?

**एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।**

**त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥ 6/39**

एतत् मे संशयम् कृष्ण छेत्तुम् अर्हसि अशेषतः ।

त्वदन्यः संशयस्य अस्य छेत्ता न हि उपपद्यते ।।

हे आकर्षणमूर्त! मेरे इस सन्देह को पूरी तरह नष्ट करने में समर्थ हो; क्योंकि इस संशय का नाश करने वाला आपके सिवा दूसरा नहीं मिल सकता।

**श्रीभगवानुवाच:— पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।**

**न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥ 6/40**

पार्थ न एव इह न अमुत्र विनाशः तस्य विद्यते ।

न हि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिम् तात गच्छति ।।

हे पृथ्वीपति! उस योगी का न इस लोक में अथवा परलोक में भी विनाश नहीं होता; क्योंकि हे तात! कोई भी कल्याणकारी मनुष्य अधोगति को नहीं जाता।

**प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।**

**शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ 6/41**

प्राप्य पुण्यकृताम् लोकान् उषित्वा शाश्वतीः समाः ।

शुचीनाम् श्रीमताम् गेहे योगभ्रष्टः अभिजायते ॥

ऐसा योगभ्रष्ट व्यक्ति पुण्यात्माओं अर्थात् देवताओं के लोकों को पाकर, अनेक वर्षों तक वहाँ साधारण प्रजा के रूप में रहकर, अन्त में पवित्र श्रीमन्तों के घर में जन्म लेता है

**अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।**

**एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥ 6/42**

अथवा योगिनाम् एव कुले भवति धीमताम् । एतत् हि दुर्लभतरम् लोके जन्म यत् ईदृशम् ॥

अथवा बुद्धिमान योगियों के ब्राह्मण कुल में ही उत्पन्न होता है; किन्तु इस प्रकार का जो जन्म है, वह इस संगमयुगी लोक में पाना अधिक कठिन है।

**तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।**

**यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥ 6/43**

तत्र तम् बुद्धिसंयोगम् लभते पौर्वदेहिकम् । यतते च ततः भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥

उस संगमयुगी दूसरे जन्म में भी पूर्वजन्म से प्राप्त हुए उस बुद्धि के संयोग अर्थात् ज्ञान के संस्कारों को पाता है और हे अर्जुन! बाद में पुनः सम्पूर्ण सिद्धि या सफलता के लिए यत्न करता है।

**पूर्वाभ्यासेन तेनैव हियते ह्यवशोऽपि सः ।**

**जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥ 6/44**

पूर्वाभ्यासेन तेन एव हियते हि अवशः अपि सः ।

जिज्ञासुः अपि योगस्य शब्दब्रह्म अतिवर्तते ॥

वह अपने उस पूर्वजन्म के अभ्यास द्वारा ही विवश होकर पूर्ण सिद्धि की ओर खिंच जाता है। सहज राजयोग का ज्ञान पाने की इच्छा करने वाला भी भक्तिमार्ग की आवाज़ करने वाले कर्मकाण्ड को पार कर जाता है;

**प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।**

**अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥ 6/45**

प्रयत्नात् यतमानः तु योगी संशुद्धकिल्बिषः । अनेकजन्मसंसिद्धः ततः याति पराम् गतिम् ॥

किन्तु प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करता हुआ योगी सम्पूर्ण पापों के धुल जाने पर, अनेक जन्मों के अन्त में सम्पूर्ण सिद्ध होकर, बाद में परमगति को पाता है।

**तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।**

**कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥ 6/46**

तपस्विभ्यः अधिकः योगी ज्ञानिभ्यः अपि मतः अधिकः ।

कर्मिभ्यः च अधिकः योगी तस्मात् योगी भव अर्जुन ॥

सहजराजयोगी शारीरिक तप करने वालों से बढ़कर है, ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ माना गया है और कर्मकाण्डियों से भी सहजराजयोगी बड़ा है; इसलिए हे अर्जुन! तू योगी बन।

**योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।**

**श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥ 6/47**

योगिनाम् अपि सर्वेषाम् मद्गतेन अन्तरात्मना ।

श्रद्धावान् भजते यः माम् स मे युक्ततमः मतः ॥

सब योगियों में भी जो श्रद्धावान् योगी मेरे में लगाई हुई अन्तरात्मा अर्थात् मन-बुद्धि द्वारा मुझको याद करता है, उसे मैं सबसे श्रेष्ठ मानता हूँ।

## अध्याय-7

श्रीभगवानुवाच:- मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः ।

असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥ 7/1

मयि आसक्तमनाः पार्थ योगम् युञ्जन् मदाश्रयः ।

असंशयम् समग्रम् माम् यथा ज्ञास्यसि तत् शृणु ॥

पृथ्वीश्वर! मेरे में आसक्त हुए मन वाला और मेरा ही आश्रय लेने वाला, मेरे से पिता-पुत्र-सखादि का प्रैक्टिकल सम्बंध जोड़ता हुआ तू मेरे सम्पूर्ण स्वरूप को जिस प्रकार संशयरहित जान सकेगा, उसे सुन।

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।

यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ 7/2

ज्ञानम् ते अहम् सविज्ञानम् इदम् वक्ष्यामि अशेषतः ।

यत् ज्ञात्वा न इह भूयः अन्यत् ज्ञातव्यम् अवशिष्यते ॥

मैं तुझे अनुभवयुक्त विशेष ज्ञान अर्थात् योग सहित इस ज्ञान को पूरी तरह कहूँगा, जिसे जानकर पुनः इस लोक में कुछ भी जानने योग्य नहीं रहता।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।

यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ 7/3

मनुष्याणाम् सहस्रेषु कश्चित् यतति सिद्धये ।

यतताम् अपि सिद्धानाम् कश्चित् माम् वेत्ति तत्त्वतः ॥

हजारों मनुष्यों में कोई एक आत्मज्ञान रूपी सिद्धि के लिए यत्न करता है और यत्न करने वाले अनेक सिद्धों में भी कोई ही मुझे यथार्थ रीति जान पाता है।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।

अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ 7/4

भूमिः आपः अनलः वायुः खम् मनः बुद्धिः एव च ।

अहंकारः इति इयम् मे भिन्ना प्रकृतिः अष्टधा ॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, हवा, आकाश, सदा चलने वाला मन रूपी चन्द्रमा, जिस दर्शनशक्ति द्वारा जाना या देखा जावे अर्थात् सूर्य और सृष्टि-नवनिर्माण रूपी यज्ञ कराने वाला मैं स्वयं याजक भी- इस तरह यह मेरी प्रकृष्ट सृष्टि रूपी कृति या रचना आठ प्रकार से विभक्त है।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ 7/5

अपरा इयम् इतः तु अन्याम् प्रकृतिम् विद्धि मे पराम् ।

जीवभूताम् महाबाहो यया इदम् धार्यते जगत् ॥

हे दीर्घबाहु! यह ऊपर कही गई नीची अर्थात् हल्की प्रकृति है; किंतु इससे अतिरिक्त मेरी अष्टदेव रूपी जीवंत प्रकृष्ट रचना को तू श्रेष्ठ जान, जिस अष्टदेव रूपी चैतन्य प्रकृति के द्वारा यह जगत् धारण किया जाता है। {शिव की अष्टमूर्तियाँ}

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥ 7/6

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणि इति उपधारय । अहम् कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयः तथा ॥

सब प्राणी इस दो प्रकार की प्रकृति से ही जन्मे हैं, ऐसा तू जान ले और मैं समस्त जगत् का उत्पत्तिकर्ता और विनाशकर्ता हूँ।

**मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।**

**मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ 7/7**

मत्तः परतरम् न अन्यत् किञ्चित् अस्ति धनञ्जय ।

मयि सर्वम् इदम् प्रोतम् सूत्रे मणिगणा इव ॥

हे ज्ञानधनजेता अर्जुन! मेरे से श्रेष्ठतर कुछ भी अन्य नहीं है। धागे में पिरोए गए मणकों की तरह यह सारा जगत् मेरी याद रूपी प्रीति के धागे में पिरोया हुआ है। परमपिता परमात्मा की नंवार योग रूपी शक्ति ही सारे जड़ जंगम जगत का आधार है।

**रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।**

**प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥ 7/8**

रसः अहम् अप्सु कौन्तेय प्रभा अस्मि शशिसूर्ययोः । प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषम् नृषु ॥

हे कुंतीपुत्र अर्जुन! ज्योतिर्बिन्दु शिव की यौगिक शक्तिस्वरूप से जल में रस मैं हूँ, चन्द्र-सूर्य की कान्ति मैं हूँ, सब वेदों में ऊँकार, आकाश में शब्द और पुरुषों में पुरुषत्व रूपी शक्ति भी मैं हूँ।

**पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।**

**जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥ 7/9**

पुण्यः गन्धः पृथिव्याम् च तेजः च अस्मि विभावसौ ।

जीवनम् सर्वभूतेषु तपः च अस्मि तपस्विषु ॥

पृथ्वी में निर्विकारी सुगन्ध और अग्नि में तेज मैं हूँ तथा प्राणी मात्र में जीवनशक्ति अर्थात् आयुष्य और तपस्वियों में तपशक्ति भी मैं हूँ।

**बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।**

**बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥ 7/10**

बीजम् माम् सर्वभूतानाम् विद्धि पार्थ सनातनम् ।

बुद्धिः बुद्धिमताम् अस्मि तेजः तेजस्विनाम् अहम् ॥

हे पृथ्वीश्वर! सब प्राणियों का सनातन ज्योतिर्बिन्दु परमपिता रूपी बीज मुझको जान। बुद्धिमानों की बुद्धि मैं हूँ, तेजस्वी पुरुषों का तेज मैं हूँ।

**बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।**

**धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥ 7/11**

बलम् बलवताम् च अहम् कामरागविवर्जितम् । धर्माविरुद्धः भूतेषु कामः अस्मि भरतर्षभ ॥

मैं ज्योतिर्बिन्दु शिव बलवानों का काम और राग रहित शुद्ध बल हूँ और हे भरतवंश में श्रेष्ठ! प्राणियों में धर्म के अनुकूल स्त्री-संग की निर्विकारी कामना भी मैं हूँ।

**ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।**

**मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥ 7/12**

ये च एव सात्त्विका भावा राजसाः तामसाः च ये ।

मत्त एव इति तान् विद्धि न तु अहम् तेषु ते मयि ॥

और भी जो क्रमशः सात्त्विक, राजसी और तामसी भाव-संकल्प-विकल्पादि हैं, उनको सतयुग से कलियुग तक के पतनोन्मुखी कालक्रम में मेरे से ही उत्पन्न हुआ ऐसा जान। मैं उनमें नहीं हूँ; किन्तु वे भाव अपने मूल शुद्ध स्वरूप में मेरे साकार मनुष्य-सृष्टि के बीज प्रजापिता में हैं।

**त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।**

**मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥ 7/13**

त्रिभिः गुणमयैः भावैः एभिः सर्वम् इदम् जगत् ।

मोहितम् न अभिजानाति माम् एभ्यः परम् अव्ययम् ।।  
 इन सत-रज-तम तीन गुणों से युक्त भावों द्वारा मोहित हुआ यह सारा जगत्, इन गुणों से परे मुझ अविनाशी साकार में निराकार ज्योतिर्बिंदु शिव पार्टधारी को नहीं जानता ।

**दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।**

**मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ 7/14**

दैवी हि एषा गुणमयी मम माया दुरत्यया । माम् एव ये प्रपद्यन्ते मायाम् एताम् तरन्ति ते ।।  
 मेरी यह दैवी अलौकिक गुणमयी माया निश्चय ही कठिनाई से पार करने योग्य है । जो मेरी ही शरण लेते हैं, वे इस दैवी माया को पार कर पाते हैं । {दैवी माया}

**न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।**

**माययापहतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥ 7/15**

न माम् दुष्कृतिनः मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।  
 मायया अपहतज्ञानाः आसुरं भावम् आश्रिताः ।।  
 किंतु आसुरी माया द्वारा जिनका ज्ञान हर लिया गया है, ऐसे आसुरी स्वभाव वाले पापी, मनुष्यों में नीच, मूर्ख लोग मेरी शरण में नहीं आते । {आसुरी माया}

**चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।**

**आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ 7/16**

चतुर्विधा भजन्ते माम् जनाः सुकृतिनः अर्जुन । आर्तः जिज्ञासुः अर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।।  
 हे भरतवंश में श्रेष्ठ अर्जुन! चार प्रकार के पुण्य कर्म वाले ब्राह्मण जन मेरी याद करते हैं—  
 विपत्तिग्रस्त, दुःखी या परेशान, कौतूहलवश कुछ जानने की इच्छा वाले, धन-वैभव की चाहना वाले और  
 ज्ञानी-सब कुछ जानने-समझने का उद्यमी । गीता पण्डा/ब्रह्मा पुत्र ब्राह्मणों को ही सुनाई गई है ।  
 पुण्यकर्मी पांडव/ब्राह्मण ही भगवान को भजते हैं, असुर नहीं ।

**तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।**

**प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥ 7/17**

तेषाम् ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिः विशिष्यते ।  
 प्रियः हि ज्ञानिनः अत्यर्थम् अहम् स च मम प्रियः ।।  
 उनमें एक की अव्यभिचारी याद वाला सदा योगी ज्ञानी जन विशेष श्रेष्ठ है; क्योंकि ज्ञानी को मैं प्रिय हूँ  
 और वह मुझको अत्यन्त प्रिय है । {ज्ञानी तू आत्मा मुझे प्रिय है ।}

**उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।**

**आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥ 7/18**

उदाराः सर्व एव एते ज्ञानी तु आत्मा एव मे मतम् ।  
 आस्थितः स हि युक्तात्मा माम् एव अनुत्तमाम् गतिम् ।।  
 यों तो ये चारों ही अच्छे हैं; किन्तु ज्ञानी तो मेरी आत्मा अर्थात् स्वरूप ही है—ऐसा मेरा मत है; क्योंकि  
 वह योगयुक्त पुरुष मुझ सर्वश्रेष्ठ गति का ही आधार लेता है, अन्य किसी देहधारी या ब्राह्मण परिवार  
 का आधार नहीं लेता ।

**बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।**

**वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ 7/19**

बहूनाम् जन्मनाम् अन्ते ज्ञानवान् माम् प्रपद्यते । वासुदेवः सर्वम् इति स महात्मा सुदुर्लभः ।।  
 ज्ञानी तू आत्मा बहुत अर्थात् 84 जन्मों के अन्त में मुझको प्राप्त होता है । सारा जगत् ज्ञान  
 धन-सम्पत्ति देने वाले वसुदेव शिवबाबा की रचना है, ऐसा मानने वाला वह महान् आत्मा बड़ी कठिनाई  
 से मिलता है ।

**कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।**

**तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥ 7/20**

कामैः तैः तैः हृतज्ञानाः प्रपद्यन्ते अन्यदेवताः ।

तम् तम् नियमम् आस्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥

उन-2 विशेष कामनाओं द्वारा विवेकरहित अर्थात् मोहित हुए लोग, उस-2 कनवर्टिड देवता के नियम-सिद्धान्त का आधार लेकर, अपने अनादि निश्चित स्वभाव से बँधे हुए दूसरे ब्राह्मण देवों की शरण में जाते हैं ।

**यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।**

**तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥ 7/21**

यः यः याम् याम् तनुम् भक्तः श्रद्धया अर्चितुम् इच्छति ।

तस्य तस्य अचलाम् श्रद्धाम् ताम् एव विदधामि अहम् ॥

जो-2 व्यक्ति जिस-2 देवता के साकार स्वरूप को श्रद्धापूर्वक पूजने वा याद करने के लिए इच्छा करता है, उस-2 भक्त की उसी दृढ़ श्रद्धा को मैं निश्चित करता हूँ ।

● जो जिस धर्म का है वह उसी (धर्मपिता) की बात मानेगा । (मु.ता.....)

**स तथा श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।**

**लभते च ततः कामान्मयैव विहितान् हि तान् ॥ 7/22**

स तथा श्रद्धया युक्तः तस्य आराधनम् ईहते ।

लभते च ततः कामान् मया एव विहितान् हि तान् ॥

मेरे द्वारा निश्चित की हुई उस श्रद्धा से लगा हुआ वह व्यक्ति उस देवता की प्रसन्नता को चाहता है और उस देवता से मेरे द्वारा ही बनाए गए उन कामनाओं को निःसन्देह पाता है ।

**अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।**

**देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥ 7/23**

अन्तवत् तु फलम् तेषाम् तत् भवति अल्पमेधसाम् ।

देवान् देवयजः यान्ति मद्भक्ता यान्ति माम् अपि ॥

उन अल्पबुद्धि वाले, बेसमझ लोगों का तो वह फल विनाशी होता है; क्योंकि अन्यान्य ब्राह्मण-देवों के प्रति त्याग करने वाले कम कलाओं वाले कनवर्टिड देवताओं को पाते हैं और मुझे भजने वाले मेरे 16 कला सम्पूर्ण पद को अर्थात् अर्धनारीश्वर शिव के भगवान-भगवती स्वरूप को ही पाते हैं ।

**अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।**

**परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥ 7/24**

अव्यक्तम् व्यक्तिम् आपन्नम् मन्यन्ते माम् अबुद्धयः ।

परम् भावम् अजानन्तः मम अव्ययम् अनुत्तमम् ॥

बेसमझ लोग मुझे अव्यक्त ज्योतिर्बिन्दु स्वरूप निराकार शिव को व्यक्त देहधारी ब्रह्मा के रूप में आया हुआ मानते हैं और मेरे सर्वश्रेष्ठ 84 जन्मों में भी अविनाशी परम ज्योतिर्बिन्दु प्रैक्टिकल स्वरूप शिव-शंकर को नहीं जान पाते ।

**नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।**

**मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥ 7/25**

न अहम् प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।

मूढः अयम् न अभिजानाति लोकः माम् अजम् अव्ययम् ॥

योगमाया से ढका हुआ मैं सबके लिए प्रकट नहीं हूँ । यह मूढ़ जगत मुझे गर्भ से अजन्मा, अविनाशी पार्टधारी को नहीं जान पाता ।

**वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।**

**भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥ 7/26**

वेद अहम् समतीतानि वर्तमानानि च अर्जुन ।

भविष्याणि च भूतानि माम् तु वेद न कश्चन ।।  
हे अर्जुन! अजन्मा होने से त्रिकालदर्शी में शिव भूतकालीन और वर्तमानकालीन तथा भविष्य में होने वाले प्राणियों को जानता हूँ; किन्तु मुझ अव्यक्त ज्योतिर्बिंदु शिव को कोई नहीं जानता ।

**इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।**

**सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप ॥ 7/27**

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत । सर्वभूतानि सम्मोहम् सर्गे यान्ति परन्तप ।।

हे कामादिक शत्रुओं को पीड़ित करने वाले! हे भरतवंशी! इच्छा और द्वेष से उत्पन्न हुए सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों के मोह से सब प्राणी कल्पान्त काल में सम्पूर्ण मूढ़ता को पहुँच जाते हैं अर्थात् चतुर्युगांत कालीन तामसी कलियुग के अन्त में सब तमोप्रधान हो जाते हैं ।

**येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।**

**ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥ 7/28**

येषाम् तु अन्तगतम् पापम् जनानाम् पुण्यकर्मणाम् ।

ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते माम् दृढव्रताः ।।

परंतु जिन ईश्वरीय सेवा का पुण्य कर्म करने वाले ब्राह्मण जनों का पाप नष्ट हो गया है, वे सुख-दुःखादि द्वन्द्वों के मोह से मुक्त हुए दृढव्रत वाले मुझको भजते हैं ।

**जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।**

**ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥ 7/29**

जरामरणमोक्षाय माम् आश्रित्य यतन्ति ये ।

ते ब्रह्म तत् विदुः कृत्स्नम् अध्यात्मम् कर्म च अखिलम् ।।

जो बुढ़ापा और मृत्यु के दुःख से मुक्त होने के लिए मेरा आधार लेकर पुरुषार्थ करते हैं, वे उस ब्रह्म को, सम्पूर्ण आध्यात्म ज्ञान को और समस्त कर्म को जानते हैं ।

**साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।**

**प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥ 7/30**

साधिभूताधिदैवम् माम् साधियज्ञम् च ये विदुः ।

प्रयाणकालेऽपि च माम् ते विदुः युक्तचेतसः ।।

जो ब्राह्मण मुझे प्राणियों और देवताओं के अधिष्ठाता सहित और रुद्र ज्ञान यज्ञ के अधिपति प्रजापिता ब्रह्मा सहित जानते हैं, वे योगयुक्त मन-बुद्धि वाले भी कल्पान्त में, ब्रह्मलोक जाने के समय मुझको ही जान जाते हैं ।

## अध्याय-8

**अर्जुन उवाच:- किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।**

**अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥ 8/1**

किम् तत् ब्रह्म किम् अध्यात्मम् किम् कर्म पुरुषोत्तम ।

अधिभूतम् च किम् प्रोक्तम् अधिदैवम् किम् उच्यते ।।

हे आत्माओं में उत्तम-परमपिता शिव! वह ब्रह्म क्या है? अध्यात्म क्या है? कर्म क्या है? अधिभूत किसको कहते हैं? और अधिदैव किसे कहा जाता है?

**अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।**

**प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥ 8/2**

अधियज्ञः कथम् कः अत्र देहे अस्मिन् मधुसूदन ।

प्रयाणकाले च कथम् ज्ञेयः असि नियतात्मभिः ।।



हे मधु रूपी कामविकार को नाश करने वाले शिवपिता! इस देह में यज्ञ का अधिष्ठाता कैसे और कौन है? और कल्पान्त में महामृत्यु के समय वशीभूत मन-बुद्धि वालों द्वारा इस शरीर में कैसे जानने योग्य है?

**श्रीभगवानुवाच:- अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।**

**भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ 8/3**

अक्षरम् ब्रह्म परमम् स्वभावः अध्यात्मम् उच्यते । भूतभावोद्भवकरः विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥

अविनाशी परमधाम ब्रह्म तत्त्व है। आत्मभाव अध्यात्म कहा जाता है। सतोगुणी प्राणियों की उत्पत्ति करने वाला त्याग अर्थात् यज्ञ-सेवा कर्म कहा जाता है।

**अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।**

**अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥ 8/4**

अधिभूतम् क्षरः भावः पुरुषः च अधिदैवतम् । अधियज्ञः अहम् एव अत्र देहे देहभृताम् वर ॥

हे देहधारियों में श्रेष्ठ प्रजापिता ब्रह्मा रूपी अर्जुन! नाशवान या पतनशील भाव अधिभूत-भूतों का अधिष्ठाता ब्रह्मा है और शरीर रूपी पुरी में आराम से शयन अर्थात् शांति प्राप्त करने वाली आत्मा अधिदैव रूपी परम पुरुष विष्णु है। इस संगमयुगी प्रथम ब्राह्मण के शरीर में त्याग रूपी यज्ञ सेवा का अधिपति-परमपिता शिव मैं ही हूँ।

**अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।**

**यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥ 8/5**

अन्तकाले च माम् एव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम् ।

यः प्रयाति स मद्भावम् याति न अस्ति अत्र संशयः ॥

जो कल्पान्तकाल में भी मुझ शिव-शंकर को ही याद करता हुआ शरीर को छोड़कर प्रयाण करता है, वह योगी मेरे ईशत्व अर्थात् विश्वनाथ के भाव को पाता है। इस विषय में संदेह नहीं है।

**यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।**

**तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥ 8/6**

यम् यम् वा अपि स्मरन् भावम् त्यजति अन्ते कलेवरम् ।

तम् तम् एव एति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥

हे कुन्ती माता के पुत्र! अथवा जिस-2 भाव को भी स्मरण करता हुआ, अन्तकाल में शरीर को त्यागता है, सदैव उसी भावना से युक्त हुआ उस-2 भाव को ही पाता है;

**तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।**

**मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥ 8/7**

तस्मात् सर्वेषु कालेषु माम् अनुस्मर युध्य च ।

मयि अर्पितमनोबुद्धिः माम्\* एव एष्यसि असंशयम् ॥

इसलिए हर समय मुझे याद कर और स्व काम विकार रूपी माया से युद्ध कर। निस्सन्देह मुझमें : मन-बुद्धि से अर्पित हुआ तू मेरे ईशत्व अर्थात् शासकीय भाव को ही पाएगा। {लक्ष्य} \*राजयोग का अर्थ ही है राजाई पद पाना।

**अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।**

**परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥ 8/8**

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना । परमम् पुरुषम् दिव्यम् याति पार्थ अनुचिन्तयन् ॥

हे पृथ्वी के शासनकर्ता! अभ्यास द्वारा योगयुक्त हुई अव्यभिचारी मन-बुद्धि से विचार-सागर-मन्थन करता हुआ ब्राह्मण प्रकाशित परम पुरुष-परमपिता शिव को पाता है।

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।

सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ 8/9

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।

भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ 8/10

कविं पुराणम् अनुशासितारम् अणोः अणीयांसम् अनुस्मरेत् यः ।

सर्वस्य धातारम् अचिन्त्यरूपम् आदित्यवर्णम् तमसः परस्तात् ॥

प्रयाणकाले मनसा अचलेन भक्त्या युक्तः योगबलेन च एव ।

भ्रुवोः मध्ये \*प्राणम् आवेश्य सम्यक् स तम् परम् पुरुषम् उपैति दिव्यम् ॥

जो योगी कवि पुरातन, सबके शासक, सूक्ष्म अणु से भी अति सूक्ष्म, सबको धारण करने वाले, अचिन्त्य रूप वाले, सूर्य की तरह प्रकाशित, अंधकार से परे ज्योतिर्लिंग शिव को कल्पान्तकालीन महामृत्यु के समय अडोल मन से, भक्ति भाव से और योगबल से लगा हुआ भ्रुकुटि के बीच में ही मन-बुद्धि रूपी आत्मा को भली प्रकार स्थापित करके स्मरण करता है, वह योगी उस प्रकाशित परम पुरुष परमात्मा शिव-शंकर को पाता है । \*प्राणिति जीवात्मनेन-मन-बुद्धि रूपी शक्ति ।

यदक्षरं वेदविदो वदन्तिविशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥ 8/11

यत् अक्षरम् वेदविदः वदन्ति विशन्ति यत् यतयः वीतरागाः ।

यत् इच्छन्तः ब्रह्मचर्यम् चरन्ति तत् ते पदम् संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥

ब्रह्मवाक्यस्वरूप वेद मुरली को जानने वाले जिसे अविनाशी बताते हैं, आसक्ति रहित योगीजन जिसमें प्रवेश करते हैं अर्थात् मन्मनाभव और जिसकी इच्छा करने वाले ब्रह्मचर्य व्रत का आचरण करते हैं, उस विष्णु रूप परम पद को संक्षेप में तुझे बताऊँगा ।

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।

मूर्ध्न्याधाय आत्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥ 8/12

सर्वद्वाराणि संयम्य मनः हृदि निरुध्य च ।

मूर्ध्नि आधाय आत्मनः प्राणम् आस्थितः योगधारणाम् ॥

सब इन्द्रियों के नौ द्वारों को सम्पूर्ण नियमित करके और संकल्पशक्ति को अन्तःकरण में रोककर, आत्मा की शक्ति को भ्रुकुटि के मध्य में रोककर, योग की धारणा में स्थिर हुआ ।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।

यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥ 8/13

ओम् इति एकाक्षरम् ब्रह्म व्याहरन् माम् \*अनुस्मरन् ।

यः प्रयाति त्यजन् देहम् स याति परमाम् गतिम् ॥

'ॐ' इस प्रकार आदि, मध्य और अंत सूचक अर्थात् आत्म-अर्थक एक अक्षर को मन में उच्चारण करके मुझ सत्य स्वरूप परमेश्वर शिव-शंकर का स्मरण करता हुआ शरीर को त्यागकर जो पुरुष कल्पान्तकालीन अन्तिम यात्रा करता है, वह विष्णु रूप परम गति को पाता है । \* अंतकाल में भ्रुकुटि-मध्य अणु रूप आत्मा को याद करना है ।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।

तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥ 8/14

अनन्यचेताः \*सततम् यः माम् स्मरति नित्यशः ।

तस्य अहम् सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥

अनन्यचित्त वाला जो व्यक्ति मुझको नित्य-निरन्तर स्मरण करता है, हे अर्जुन! नित्यलगनशील उस योगी को मैं सुख से मिल जाता हूँ । \* श्वासों-श्वास मुझे याद करना है ।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।

**नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥ 8/15**

माम् उपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयम् अशाश्वतम् ।  
न आप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिम् परमाम् गताः ॥

मुझ परमधामवासी के पास पहुँचकर विष्णु रूप परम सिद्धि अर्थात् ल०ना० रूपी लक्ष्य को पहुँचे हुए महात्माजन नाशवान कलियुगी दुःखों के घर स्वरूप पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त करते अर्थात् वे स्वर्णिम संगमयुगी बैकुण्ठ स्वरूप सतयुग में शाश्वत्-सुख को ही पाते हैं ।

**आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।**

**मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ 8/16**

आब्रह्मभुवनात् लोकाः पुनरावर्तिनः अर्जुन । माम् उपेत्य तु कौन्तेय \*पुनर्जन्म न विद्यते ॥

हे सद्भाग्य का अर्जन करने वाले! यद्यपि ब्रह्मलोक से लेकर सभी लोक पुनः पुनः आवर्तन करने वाले हैं; किन्तु हे कुन्ती पुत्र! मेरे पास पहुँच कर इस दुःखी लोक में फिर से जन्म नहीं होता । \*मेरे घर ब्रह्मलोक में पहुँचने की बात है ।

**सहस्रयुगपर्यन्तमहर्षद्ब्रह्मणो विदुः ।**

**रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ 8/17**


सहस्रयुगपर्यन्तम् द्विसहस्रार्धवर्षाणां अहः यत् ब्रह्मणः विदुः ।  
रात्रिम् युगसहस्रान्ताम् प्रमाणमेतेषां ते अहोरात्रविदो जनाः ॥

ब्रह्मा के ढाई हजार वर्ष के सतयुग-त्रेतायुग रूपी दिन को तथा इतने ही वर्ष प्रमाण की द्वापर-कलियुग रूपी अज्ञान-रात्रि को जो जानते हैं, वे ब्रह्मा के ज्ञानप्रकाश रूपी दिन और अज्ञानान्धकार रूपी रात्रि को जानने वाले मनुष्य हैं ।

**अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।**

**रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥ 8/18**

अव्यक्तात् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्ति अहरागमे ।  
रात्र्यागमे रात्र्यान्ते प्रलीयन्ते तत्र एव अव्यक्तसंज्ञके ॥

ब्रह्मा का सतयुग-त्रेता रूपी स्वर्गीय दिन आने पर अव्यक्त परमधाम से सभी व्यक्त प्राणी न०वार उत्पन्न होते हैं और ब्रह्मा की द्वापर-कलियुग रूपिणी रात्रि के अन्त में अव्यक्त संज्ञा वाली ज्योतिर्बिन्दु आत्माएँ उस परमधाम में ही भली प्रकार एकाग्र अर्थात् मूल स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाती हैं ।  प्र+लीयते । लीन=ली+क्त=एकाग्र, अर्थात् मूल स्वरूप से प्रतिष्ठित होना ।

**भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।**

**रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥ 8/19**

भूतग्रामः स एव अयम् भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।  
रात्र्यागमे रात्र्यान्ते अवशः पार्थ प्रभवति अहरागमे ॥

वह ही यह प्राणियों का समूह बार-2 जन्म लेकर ब्रह्मा की द्वापर-कलियुगी अज्ञान रात्रि के अन्त में अनादि निश्चित विश्व नाटक के पराधीन विवश हुआ भली-भाँति मूल अव्यक्त स्वरूप में एकाग्र हो जाता है । और हे अर्जुन! ब्रह्मा का सतयुग रूपी दिन आने पर न०वार प्रगट हो जाता है ।

**परस्तस्मान्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।**

**यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥ 8/20**

परः तस्मात् तु भावः अन्यः अव्यक्तः अव्यक्तात् सनातनः ।  
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥

उस अव्यक्त भूतग्राम से भी बढ़कर जो अप्रगट और नित्य, दूसरा भाव अर्थात् बीज-रूप आत्मभाव है, वह सब प्राणियों में व्यक्त स्वरूप के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता ।

**अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।**

**यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ 8/21**

अव्यक्तः अक्षरः इति उक्तः तम् आहुः परमाम् गतिम् ।  
यम् प्राप्य न निवर्तन्ते तत् धाम परमम् मम ॥

अप्रगट विष्णुलोक अविनाशी ऐसे कहा जाता है, उसको परम गति कहते हैं। जिसको पाकर प्राणी इस दुःखी संसार में नहीं लौटते, वह मेरा परमधाम है।

**पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।**

**यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥ 8/22**

पुरुषः स परः ♥पार्थ भक्त्या लभ्यः तु अनन्यया ।  
यस्य अन्तःस्थानि भूतानि येन सर्वम् इदम् ✨ततम् ॥

हे पृथ्वी के राजा! वह परम+आत्मा तो अव्यभिचारी याद द्वारा पाने योग्य है। जिस मनुष्य-सृष्टि के बीज आदिदेव के अंदर सब प्राणी स्थित हैं और जिससे यह सारा जगत् बीज से वृक्ष की तरह विस्तृत हुआ है। ♥पार्थ पृथे: पृथिव्याः ईश्वरः अण् पृथ्वी का राजा। ✨ततम् तन्+क्त विस्तृत अर्थात् विस्तार को पाया हुआ।

**यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।**

**प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ 8/23**

यत्र काले तु अनावृत्तिम् आवृत्तिम् च एव योगिनः ।  
प्रयाता यान्ति तम् कालम् वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥

हे भरतवंश में श्रेष्ठ! जिस कल्पान्त काल में परमधाम की सर्वोत्तम यात्रा करने वाले योगी जन इस दुःखी संसार में नहीं आते अथवा आवर्तन रूप स्थिति को पाते भी हैं, उस काल को मैं तुझे बताऊँगा।

**{पुरुषोत्तम संगमयुगी वर्णन}**

**अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।**

**तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ 8/24**

अग्निः ज्योतिः अहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।  
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदः जनाः ॥

अग्नि रूप शिव की ज्ञान सूर्य स्वरूप ज्योति, दिवस, शुक्ल पक्ष, उत्तरायण के छः महीने—यह प्रकाशयुक्त ज्ञान मार्ग है— वहाँ प्रलयकालीन महामृत्यु को प्राप्त हुए ज्ञानी जन जीते जी प्रजापिता ब्रह्मा सो विष्णुलोक को पाते हैं।

**धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।**

**तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥ 8/25**

धूमः रात्रिः तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।  
तत्र चान्द्रमसम् ज्योतिः योगी प्राप्य निवर्तते ॥

धूम, रात्रि तथा कृष्ण पक्ष, छः महीना रूप दक्षिणायन मार्ग—यह अज्ञान—अन्धकारयुक्त मार्ग है, वहाँ मृत्यु प्राप्त ईश्वरीय जिज्ञासा को गौण समझ कर, कर्म को ही प्रधानता देने वाला योगी ज्ञान चन्द्रमा ब्रह्मा सम्बन्धी धूमिल ज्ञान प्रकाश को प्राप्त करके, फिर इसी दुःखी संसार में सूक्ष्म शरीरधारी भूत—प्रेत बनकर लौटता है, जीते जी बैकुण्ठ में नहीं जाता।

**शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।**

**एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥ 8/26**

शुक्लकृष्णे गती हि एते जगतः शाश्वते मते ।  
एकया याति अनावृत्तिम् अन्यया आवर्तते पुनः ॥

सारे जगत की शुक्ल और कृष्ण ये दोनों गतियाँ निश्चय ही शाश्वत मानी जाती हैं। इनमें से एक ज्ञानमार्गीय शुक्ल गति से दुःखी संसार में आना नहीं होता, जबकि दूसरी धूमिल ज्ञान वाली कृष्ण गति से फिर से दुःखी संसार में आना होता है।

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥ 8/27

न एते सृती पार्थ जानन् योगी मुह्यति कश्चन ।

तस्मात् सर्वेषु कालेषु योगयुक्तः भव अर्जुन ॥

हे पृथ्वी के राजा! इन दोनों गतियों को जानने वाला कोई भी ज्ञानवान योगी मोहान्धकार को नहीं पाता। इस कारण हे सद्भाग्य का अर्जन करने वाले! तू हर समय योगयुक्त रह।

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।

अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥ 8/28

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु च एव दानेषु यत् पुण्यफलम् प्रदिष्टम् ।

अत्येति तत् सर्वम् इदम् विदित्वा योगी परम् स्थानम् उपैति च आद्यम् ॥

वेदों में, भौतिक यज्ञों में, शारीरिक तपस्याओं में और सांसारिक दान में भी जो पुण्यफल बताया गया है, योगी उस सबको यह गीता ज्ञान जान लेने पर, अतिक्रमण कर जाएगा और आदिकालीन विष्णु रूप परम पद को प्राप्त कर लेगा।

## अध्याय-9

श्रीभगवानुवाच:- इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।

ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्षयसेऽशुभात् ॥ 9/1

इदम् तु ते गुह्यतमम् प्रवक्ष्यामि अनसूयवे ।

ज्ञानम् विज्ञानसहितम् यत् ज्ञात्वा मोक्षयसे अशुभात् ॥

गुणों में दोष न देखने वाले तुझको योग रूपी विशेष ज्ञान सहित अत्यन्त गुप्त इस ईश्वरीय ज्ञान को बताऊँगा कि जिसको जानकर पाप अथवा दुःख से मुक्त हो जाएगा।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।

प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥ 9/2

राजविद्या राजगुह्यम् पवित्रम् इदम् उत्तमम् ।

प्रत्यक्षावगमम् धर्म्यम् सुसुखम् कर्तुम् अव्ययम् ॥

यह ईश्वरीय ज्ञान राजाओं की विद्या है, राजाई का रहस्य है, पवित्र है, सर्वोत्तम ज्ञान है, प्रत्यक्ष अर्थात् साक्षात् ईश्वर द्वारा जाना जाता है, धर्मानुकूल है, पालन करने के लिए अत्यन्त सहज है और अविनाशी भी है।

अश्रद्धाणाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप ।

अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ 9/3

अश्रद्धाणाः पुरुषा धर्मस्य अस्य परन्तप। अप्राप्य माम् निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥

हे कामादिक शत्रुओं को ताप देने वाले! इस गीता वर्णित धर्म की श्रद्धा न करने वाले पुरुष मुझ अव्यक्त ज्ञान सूर्य— गी. 8/24, 25 को न पाकर, मृत्युलोक के मार्ग कृष्ण गति में लौट जाते हैं।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥ 9/4

मया ततम् इदम् सर्वम् जगत् अव्यक्तमूर्तिना ।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न च अहम् तेषु अवस्थितः ॥

मेरे अति सूक्ष्म होने से, प्रगट न होने वाले निराकारी ज्योतिर्बिंदु की विस्तारित बीजरूप साकार लिंगमूर्ति के द्वारा यह सारा जगत् सूक्ष्म बीज से वृक्ष की भाँति विस्तृत हुआ है। अतः सभी प्राणी मुझ अव्यक्त

बीजरूप में स्थित हैं; किन्तु मैं उनमें स्थित नहीं हूँ। अर्थात् सर्वव्यापी नहीं हूँ। ॐ नाहं तेषु ते मयि गीता 7/12

**न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।**

**भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥ 9/5**

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगम् ऐश्वरम् ।

भूतभृत् न च भूतस्थः मम आत्मा भूतभावनः ॥

मेरे ऐश्वर्यवान् ज्योतिर्लिंग योगस्वरूप को देख, जहाँ आकाशादि पंचभूत भी मेरे में स्थित नहीं है। ज्ञान बीज से प्राणियों को उत्पन्न करने वाली तथा योग रूपी खुराक से प्राणियों का भरण-पोषण करने वाली मेरी आत्मा उन जड़जंगम प्राणियों में स्थित भी नहीं है। अर्थात् सर्वव्यापी नहीं हूँ।

**यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।**

**तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ 9/6**

यथा आकाशस्थितः नित्यम् वायुः सर्वत्रगः महान् ।

तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानि इति उपधारय ॥

जिस तरह निरंतर हर जगह जाने वाली महान वायु आकाश में स्थित है, उसी तरह सब जड़जंगम प्राणी मुझ बीज रूप साकार प्रजापिता में स्थित है, ऐसा तू जान ले। अर्थात् मैं सर्वव्यापी नहीं हूँ।

**सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।**

**कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥ 9/7**

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिम् यान्ति मामिकाम् ।

कल्पक्षये पुनः तानि कल्पादौ विसृजामि अहम् ॥

हे कुन्ती पुत्र! कल्पान्तकाल में सब प्राणी मेरी निराकारी स्टेज धारण करने वाली प्रकृष्ट शरीर रूपी कृति शंकर के अव्यक्त ज्योतिर्बिन्दु आत्मिक भाव को पाते हैं और कल्प के आदि काल से मैं उन्हें फिर से सृष्टि के लिए छोड़ देता हूँ।

**प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।**

**भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥ 9/8**

प्रकृतिम् स्वाम् अवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।

भूतग्रामम् इमम् कृत्स्नम् अवशम् प्रकृतेः वशात् ॥

मैं अपनी प्रकृति अर्थात् अव्यक्त ज्योतिर्लिंग स्वभाव को वश में रखकर पतनशील स्वभाव की आधीनता से पराधीन इस सम्पूर्ण प्राणी समुदाय को बार-2 सृष्टि के लिए छोड़ता हूँ

**न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ।**

**उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥ 9/9**

न च माम् तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ।

उदासीनवत् आसीनम् असक्तम् तेषु कर्मसु ॥

और हे ज्ञानधनजेता! वे कर्म मुझ ज्योतिर्लिंग शिव-शंकर को नहीं बाँधते; क्योंकि मैं उन कर्मों में उदासीन के समान अनासक्त रहता हूँ।

**मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।**

**हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥ 9/10**

मया अध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् । हेतुना अनेन कौन्तेय जगत् विपरिवर्तते ॥

हे कुन्ती पुत्र! कल्पादिकाल में मेरी अध्यक्षता में अर्थात् देखरेख में प्रकृति जड़-चेतन रूप स्वर्णिम संगमयुगी शुद्ध जगत को पैदा करती है, इस एक ही कारण से यह अधोमुखी जगत् विपरीत गति से सतयुगी ऊर्ध्वलोक में परिवर्तित होता है। उल्टी सीढ़ी की चाढ़ी

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।

परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥ 9/11

अवजानन्ति माम् मूढा मानुषीम् तनुम् आश्रितम् ।

परम् भावम् अजानन्तः मम भूतमहेश्वरम् ॥

मूर्ख लोग मानवीय मुकर्रर शरीर का आधार लेने वाले मुझ परमेश्वर शिव—शंकर की अवज्ञा करते हैं, वे मूर्ख प्राणियों के ईश्वर स्वरूप मेरे श्रेष्ठतम ज्योतिर्लिंग अव्यक्त भाव को नहीं जानते ।

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।

राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥ 9/12

मोघाशा मोघकर्माणः मोघज्ञाना विचेतसः ।

राक्षसीम् आसुरीम् च एव प्रकृतिम् मोहिनीम् श्रिताः ॥

मेरी अवज्ञा करने से व्यर्थ आशाओं वाले, व्यर्थ कर्म वाले, व्यर्थ ज्ञान वाले विपरीत मन—बुद्धि वाले लोग राक्षसी, आसुरी और मोहित करने वाली प्रकृति के महाकाली स्वभाव को ही धारण करते हैं अर्थात् तामसी प्रकृति का ही आश्रय लेते हैं;

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।

भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ 9/13

महात्मानः तु माम् पार्थ दैवीम् प्रकृतिम् आश्रिताः ।

भजन्ति अनन्यमनसः ज्ञात्वा भूतादिम् अव्ययम् ॥

किंतु हे पृथ्वी के राजा! देवताओं की स्वभाव को धारण करने वाली महान् आत्माएँ मुझ प्राणियों के आदि आदिदेव अविनाशी ज्योतिर्लिंग स्वरूप को जानकर अव्यभिचारी मन से याद करते हैं ।

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।

नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥ 9/14

सततम् कीर्तयन्तः माम् यतन्तः च दृढव्रताः ।

नमस्यन्तः च माम् भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥

वे निरंतर मेरा गुणगान करते हुए और यत्न करते हुए ब्रह्मचर्यादि व्रतों पर दृढ़ रहने वाले हैं तथा ऐसे सदायोगी विनम्र रहते हुए मुझ ज्योतिर्लिंग शिव—शंकर की श्रद्धाभक्तिपूर्वक याद करते हैं । मन को परमपिता परमात्मा के पास बैठाना ही उप+आसना है ।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते ।

एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥ 9/15

ज्ञानयज्ञेन च अपि अन्ये यजन्तः माम् उपासते । एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥

दूसरे सामान्य लोग भी शास्त्रीय ज्ञान यज्ञ द्वारा अद्वैत भाव से, द्वैत भाव से और विश्वव्यापी मुखवाला पंचमुखी ब्रह्मा सो विष्णु, सो शिव—शंकर जानकर पूजा करते हुए मुझ ज्योतिर्लिंग शिव—शंकर की अनेक प्रकार से उपासना करते हैं ।

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।

मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ 9/16

अहम् क्रतुः अहम् यज्ञः स्वधा अहम् अहम् औषधम् ।

मन्त्रः अहम् अहम् एव आज्यम् अहम् अग्निः अहम् हुतम् ॥

मैं किया हुआ शुद्ध संकल्प या प्रज्ञा हूँ, मैं त्याग रूप यज्ञ हूँ, मैं आत्मा का स्मृति रूपी अन्न हूँ, मैं रोगी आत्माओं के लिए औषधि हूँ, मैं महामंत्र हूँ, मैं स्मृति रूपी घृत हूँ, मैं ज्ञान—योग रूपी अग्नि हूँ, मैं ही दान रूप आहुति हूँ ।

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।

**वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च ॥ 9/17**

पिता अहम् अस्य जगतः माता धाता पितामहः।  
वेद्यम् पवित्रम् ओंकारः ऋक् साम यजुः एव च ॥

इस जगत् का ज्ञानबीज रूपी परमपिता, ज्ञान द्वारा संवर्धन करने वाली ब्रह्मा रूपी वृहत् माता, कर्मफल विधाता धर्मराज और बाबा भी मैं हूँ। जानने योग्य पवित्र आत्मा स्वरूप ओंकार, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद रूपी सच्चा ज्ञान भंडार मैं ही हूँ।

**गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।**

**प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥ 9/18**

गतिः भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणम् सुहृत्।  
प्रभवः प्रलयः स्थानम् निधानम् बीजम् अव्ययम् ॥

मैं सद्गति वाले ना० रूप मनुष्य जीवन का लक्ष्य हूँ, पति हूँ, स्वामी हूँ; साक्षी, आश्रय, शरण और मित्र हूँ। उत्पत्ति, विनाश, स्थिति, आधार और अविनाशी आत्माओं और मनुष्य सृष्टि का बीज भी मैं ही हूँ।

**तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।**

**अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥ 9/19**

तपामि अहम् अहम् वर्षम् निगृह्णामि उत्सृजामि च।  
अमृतम् च एव मृत्युः च सत् असत् च अहम् अर्जुन ॥

मैं ज्ञान सूर्य बनकर तप रहा हूँ, मैं मेघ बनकर ज्ञान वर्षा करता हूँ, सूर्य रूप में ज्ञान जल खींचता और छोड़ता हूँ और मैं ही ज्ञान मंथन रूपी अमृत हूँ और असत्य रूपी अनिश्चय/मृत्यु भी हूँ। हे सद्भाग्य अर्जनकर्ता अर्जुन! सदा सत्य मैं ही हूँ।

**त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।**

**ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥ 9/20**

त्रैविद्या माम् सोमपाः पूतपापा यज्ञैः इष्ट्वा स्वर्गतिम् प्रार्थयन्ते।  
ते पुण्यम् आसाद्य सुरेन्द्रलोकम् अश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान् ॥

जो ज्ञानी ब्राह्मण, देव और क्षत्रिय—इन तीन धर्मों की विधाओं के जानकार हैं, ज्ञान रूपी सोमरस को पीने वाले हैं और उससे पापमुक्त हुए तन—मन—धनादि के समर्पण रूप यज्ञ—सेवाओं से मुझ चेतन अव्यक्त ज्योतिर्लिंग शिव—शंकर को प्रसन्न करके स्वर्गीय श्रेष्ठ गति की याचना अर्थात् माँग करते हैं, वे सतयुगी—त्रेतायुगी स्वर्ग में पवित्र राजघराने को पाकर दिव्य भोगों को भोगते हैं।

**ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।**

**एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥ 9/21**

ते तम् भुक्त्वा स्वर्गलोकम् विशालम् क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकम् विशन्ति।  
एवम् त्रयीधर्मम् अनुप्रपन्नाः गतागतम् कामकामा लभन्ते ॥

वे ज्ञानी जन उस विशाल 2500 वर्षीय सतयुगी—त्रेतायुगी स्वर्गलोक को भोगकर, पु० संगमयुगी पुण्य कर्मों की प्रारब्ध क्षीण होने पर द्वैतवादी द्वापर—कलियुगी मृत्युलोक में प्रवेश करते हैं। इस प्रकार ब्राह्मण, देव और क्षत्रिय—इन तीन धर्मों का अनुकरण करने वाले भूत—भविष्य सम्बंधी काम्य कामनाओं को पाते हैं।

**अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।**

**तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ 9/22**

अनन्याः चिन्तयन्तः माम् ये जनाः पर्युपासते।  
तेषाम् नित्याभियुक्तानाम् योगक्षेमम् वहामि अहम् ॥

जो अव्यभिचारी लोग मेरा चिन्तन करते हुए तन—मन—धन, समय—संपर्क, सर्व संबंध आदि सब प्रकार से मेरे निकट रहते हैं, उन निरंतर योगियों के अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति और प्राप्त हुई की रक्षा के भार



को मैं सम्भालता हूँ। • बाबा की सर्विस में लग जाने से तुम कब भूख नहीं मरेंगे। मु.16.10.77 पृ.3  
मध्यांत

**येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।**

**तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥ 9/23**

ये अपि अन्यदेवताः भक्ता यजन्ते श्रद्धया अन्विताः ।

ते अपि माम् एव कौन्तेय यजन्ति अविधिपूर्वकम् ॥

हे कुन्ती माता के पुत्र! जो ज्योतिर्लिंग शिवशंकर महादेव की अपेक्षा अन्य देवताओं के भक्त भी श्रद्धा से भर कर त्याग करते हैं, वे भी अवैधनीय रूप अर्थात् श्रीमत के बरखिलाफ मेरा ही यजन करते हैं।

**अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।**

**न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥ 9/24**

अहम् हि सर्वयज्ञानाम् भोक्ता च प्रभुः एव च ।

न तु माम् अभिजानन्ति तत्त्वेन अतः च्यवन्ति ते ॥

क्योंकि मैं ही त्याग रूप सभी देशी-विदेशी धर्म यज्ञों का उपभोग करने वाला और स्वामी हूँ। तो भी वे विधिहीन यजन करने वाले मुझ चैतन्य ज्योतिर्लिंग अव्यक्त शिव-शंकर को वास्तविक रूप से नहीं पहचान पाते, इसलिए सत्य सनातन धर्म से कनवर्ट होकर इस्लामी आदि धर्मों में भ्रष्ट हो जाते हैं।

**यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितृव्रताः ।**

**भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥ 9/25**

यान्ति देवव्रता देवान् पितृन् यान्ति पितृव्रताः ।

भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनः अपि माम् ॥

देवताओं के भक्त देवताओं को पाते हैं, पितृभक्त पितरों-माँ-बाप को पाते हैं, भूतों के पुजारी भूतों को पाते हैं और मेरे में तन-मन-धन यजन करने वाले मेरे ईशित्व भाव को ही पाते हैं।

**पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।**

**तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ 9/26**

पत्रम् पुष्पम् फलम् तोयम् यः मे भक्त्या प्रयच्छति ।

तत् अहम् भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः ॥

जो निर्धन व्यक्ति पत्ते, पुष्प, फल वा जल जैसी साधारण वस्तुओं को भी मुझे भावनापूर्वक प्रदान करता है, उस शुद्ध बुद्धि वाले की भावनापूर्वक लाई गई उस भेंट को मैं यज्ञ-सेवा के लिए ग्रहण कर लेता हूँ।

**यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।**

**यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ 9/27**

यत् करोषि यत् अश्नासि यत् जुहोषि ददासि यत् ।

यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम् ॥

हे अर्जुन! जो कर्म तू करता है, जो तू खाता है, जो तू यज्ञ सेवा करता है, जो देता है और जो आत्मस्थिति में रहकर तपस्या करता है, वह सब मेरे लिए यज्ञार्थ अर्पण कर।

**शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।**

**संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥ 9/28**

शुभाशुभफलैः एवम् मोक्ष्यसे कर्मबंधनैः । संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तः माम् उपैष्यसि ॥

इस प्रकार शुभ और अशुभ फल वाले लौकिक कर्मों के बंधनों से छूट जाएगा और उनसे छूटा हुआ समुचित त्याग करने से योगयुक्त हुआ मेरे ईशित्व/शासक वा राजाई-भाव को प्राप्त करेगा।

**समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेषोऽस्ति न प्रियः ।**

**ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥ 9/29**

समः अहम् सर्वभूतेषु न मे द्वेष्यः अस्ति न प्रियः ।

ये भजन्ति तु माम् भक्त्या मयि ते तेषु च अपि अहम् ॥

मैं सब प्राणियों में समान भाव वाला अर्थात् पक्षपातरहित हूँ। मेरे लिए न कोई द्वेष करने योग्य है, न प्यारा है; किंतु जो मुझको श्रद्धापूर्वक याद करते हैं, वे मुझमें हैं और उनमें मैं भी हूँ। बाकी में? माया रावण

**अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।**

**साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥ 9/30**

अपि चेत् सुदुराचारः भजते माम् अनन्यभाक् । साधुः एव स मन्तव्यः सम्यक् व्यवसितः हि सः ॥

यदि कोई अत्यन्त दुराचारी भी अव्यभिचारी भाव से मुझको याद करता है, तो वह सत्पुरुष ही मानने योग्य है; क्योंकि उसने समुचित-ठीक निश्चय कर लिया है।

**क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।**

**कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ 9/31**

क्षिप्रम् भवति धर्मात्मा शश्वत् शान्तिम् निगच्छति ।

कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥

वह जल्दी ही गुणों का धारणकर्ता बन जाता है, स्थायी शान्ति पा लेता है। हे कुंती पुत्र अर्जुन! निश्चय जानो कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।

**मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।**

**स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥ 9/32**

माम् हि पार्थ व्यपाश्रित्य ये अपि स्युः पापयोनयः ।

स्त्रियः वैश्याः तथा शूद्राः ते अपि यान्ति पराम् गतिम् ॥

क्योंकि हे पृथ्वीपति! जो नीच कुलों में जन्मे हुए भी हों अथवा स्त्रियाँ वैश्य, शूद्र हों, वे भी मेरा आश्रय लेकर विष्णु रूप परम गति को पाते हैं,

**किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।**

**अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥ 9/33**

किम् पुनः ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयः तथा ।

अनित्यम् असुखम् लोकम् इमम् प्राप्य भजस्व माम् ॥

फिर पुण्यशील ब्रह्मा-पुत्र ब्राह्मणों का तथा भक्तप्रवर राजर्षियों का क्या कहना! इस क्षणभंगुर और दुःखी कलियुगी नरकलोक को पाकर, मुझको याद कर।

**मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।**

**मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥ 9/34**

मन्मना भव मद्भक्तः मद्याजी माम् नमस्कुरु ।

माम् एव एष्यसि युक्त्वा एवम् आत्मानम् मत्परायणः ॥

तू मेरे में मन लगाने वाला, मेरा यज्ञ रूप ईश्वरीय सेवा रूपी कर्म करने वाला और मुझे भजने वाला बन। मेरे प्रति श्रद्धा से झुक जा! इस प्रकार मन-बुद्धि रूपी आत्मा को लगाकर मेरे में आसक्त हुआ तू मेरे ईशित्व अर्थात् राजाई भाव को ही पाएगा।

## अध्याय- 10

**श्रीभगवानुवाच:- भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः ।**

**यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ 10/1**

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमम् वचः । यत् ते अहम् प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥

हे सहयोगियों रूपी दीर्घबाहु! और भी मेरी सर्वोत्तम वाणी सुनो, जिसे मैं सुनने में प्रीतिमान हुए तेरे लिए हित की कामना से कहूँगा।

**न मे विदुः सुरगणाः प्रभवम् न महर्षयः ।**

**अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥ 10/2**

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवम् न महर्षयः। अहम् आदिः हि देवानाम् महर्षीणाम् च सर्वशः।।

मेरे उत्कृष्ट दिव्य जन्म को न सतयुगी देवगण और न द्वापरयुगी महान् ऋषिजन ही जानते हैं; क्योंकि देवताओं और महर्षियों का सब प्रकार से आदि आदिदेव शिवशंकर मैं ही हूँ।

**यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।**

**असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ 10/3**

यः माम् अजम् अनादिम् च वेत्ति लोकमहेश्वरम्। असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते।।

जो ज्ञानी मुझको अजन्मा, अनादि और शांतिधाम, सुखधाम और दुःखधाम तीनों लोकों का महान ईश्वर जानता है, वह मनुष्यों में मोहरहित हुआ, सब पापों से पूर्ण मुक्त हो जाता है।

**बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।**

**सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ॥ 10/4**

बुद्धिः ज्ञानम् असम्मोहः क्षमा सत्यम् दमः शमः।

सुखम् दुःखम् भवः अभावः भयम् च अभयम् एव च।।

निर्णय शक्ति, समझ शक्ति, मोह का न होना, अपकारी प्रति दया, सत्य, इन्द्रिय संयम, शान्ति, सुख, दुःख, उत्पत्ति, अभाव, भय और निडरता भी तथा

**अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।**

**भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥ 10/5**

अहिंसा समता तुष्टिः तपः दानम् यशः अयशः। भवन्ति भावा भूतानाम् मत्त एव पृथग्विधाः।।

किसी को दुःखी न करना, समदृष्टि, संतोष, आत्मस्थिति रूपी तपस्या, दान, कीर्ति, अपकीर्ति इत्यादि प्राणियों के कर्म कालक्रमानुसार बुद्धिभेद होने से अनेक प्रकार के अच्छे-बुरे भाव मूलतः मेरे से ही होते हैं। [मैं शिव-शंकर महादेव साकार रूप में मनुष्य सृष्टि का बीज हूँ।]

**महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।**

**मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥ 10/6**

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारः मनवः तथा। मद्भावा मानसा जाता येषाम् लोके इमाः प्रजाः।।

पूर्वकालीन चार मानसपुत्र सनतकुमार तथा सात महर्षि-सप्तर्षि-ये सब मेरे भाव अर्थात् स्वरूप हैं, जो मानसिक मंथन से उत्पन्न हुए हैं, जिनकी संसार में यह देवता, इस्लामी, बौद्धी आदि सारी प्रजा है।

**एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ।**

**सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥ 10/7**

एताम् विभूतिम् योगम् च मम यः वेत्ति तत्त्वतः।

सः अविकम्पेन योगेन युज्यते न अत्र संशयः।।

जो मेरी इस विभूति अर्थात् विशेष रचना को तथा योगशक्ति को यथार्थ रीति जानता है, वह अविचलित योग द्वारा मेरे से जुड़ जाता है- इस बात में संशय नहीं है।

**अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।**

**इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥ 10/8**

अहम् सर्वस्य प्रभवः मत्तः सर्वम् प्रवर्तते। इति मत्वा भजन्ते माम् बुधा भावसमन्विताः।।

मैं साकार मूर्तिमान शंकर, निराकार शिव का मेल सब जगत की उत्पत्ति का कारण हूँ। मुझसे स्थापना—पालना—विनाश रूप सारा कार्य चलता है, ऐसा मानकर भावविभोर हुए बुद्धिमान लोग मुझको भजते हैं।

**मच्चिन्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।**

**कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥ 10/9**

मच्चिन्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्। कथयन्तः च माम् नित्यम् तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

मेरे में मन—बुद्धि लगाने वाले, मेरे में ही जिनके प्राण लगे हुए हैं; परस्पर एक—दूसरे को ज्ञान देते हुए और सदा मेरे विषय में ही वार्तालाप करते हुए, वे सन्तोष पाते हैं और आनन्द मनाते हैं।

**तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।**

**ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ 10/10**

तेषाम् सततयुक्तानाम् भजताम् प्रीतिपूर्वकम्। ददामि बुद्धियोगम् तम् येन माम् उपयान्ति ते॥

प्रीतिपूर्वक याद करने वाले उन निरन्तर योगियों को ऐसी बुद्धि की एकाग्रता देता हूँ, जिसके द्वारा वे मेरे पास पहुँच जाते हैं।

**तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।**

**नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥ 10/11**

तेषाम् एव अनुकम्पार्थम् अहम् अज्ञानजम् तमः।

नाशयामि आत्मभावस्थः ज्ञानदीपेन भास्वता॥

उन पर दया करने के लिए ही मैं अपने ज्योतिर्लिंग स्वरूप अव्यक्त भाव में स्थित हुआ उस चमकते हुए ज्ञान दीपक से बेसमझी से उत्पन्न हुए अंधश्रद्धा—अंधविश्वास रूपी अंधकार को नष्ट कर देता हूँ।

**अर्जुन उवाच :- परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।**

**पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥ 10/12**

परम् ब्रह्म परम् धाम पवित्रम् परमम् भवान्।

पुरुषम् शाश्वतम् दिव्यम् आदिदेवम् अजम् विभुम्॥

आप श्रेष्ठतम सत्य रूप वेद हैं, श्रेष्ठतम आधार हैं, परम पवित्र हैं, शाश्वत दिव्य पुरुष हैं और वृद्ध, कुमार, कुमारी, स्त्री, पुरुष आदि बहुरूपिया के विविध योगयुक्त रूपों में व्यक्त होने वाले अजन्मा—दिव्यजन्मा आदि अर्थात् प्रथम दिव्य पुरुष हैं।

**आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।**

**असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥ 10/13**

आहुः त्वाम् ऋषयः सर्वे देवर्षिः नारदः तथा। असितः देवलः व्यासः स्वयम् च एव ब्रवीषि मे॥

ऐसा आपके विषय में सब ऋषियों ने, देवर्षि नारद ने, असित ने, देवल ने और व्यास ने कहा है और आप स्वयं ही मुझे यही बताते हैं।

**सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।**

**न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥ 10/14**

सर्वम् एतत् ऋतम् मन्ये यत् माम् वदसि केशव।

न हि ते भगवन् व्यक्तिम् विदुः देवाः न दानवाः॥

हे सुन्दर ज्ञान जटाओं वाले शिव—शंकर! आप जो मुझे कहते हो, यह सब सत्य मानता हूँ; क्योंकि हे भगवन्! आपके व्यक्त भाव शंकर को न देवता जानते हैं, न दानव।

**स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।**

**भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥ 10/15**

स्वयम् एव आत्मना आत्मानम् वेत्थ त्वम् पुरुषोत्तम। भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते।।  
हे आत्माओं में श्रेष्ठतम्! हे प्राणियों को ज्ञान द्वारा नया जन्म देने वाले! हे भूतेश्वरनाथ! हे देवाधिदेव!  
हे जगदीश्वर! आप स्वयं ही अपने द्वारा अपने यथार्थ स्वरूप को जानते हैं। • वह सद्गुरु स्वयं ही  
आकर अपना परिचय देते हैं। मु.ता.8.10.68 पृ.2 मध्य

**वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।**

**याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥ 10/16**

वक्तुम् अर्हसि अशेषेण दिव्या हि आत्मविभूतयः।

याभिः विभूतिभिः लोकान् इमान् त्वम् व्याप्य तिष्ठसि।।

जिन पूर्ववर्णित सप्तर्षि आदि विभूतियों द्वारा इन स्वर्गादि लोकों को फैलाकर आप परमधाम में बैठ जाते हो, वे सारी दैवीय जीवात्म रूपी विभूतियाँ मुझे बताने के लिए समर्थ हो।

**कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।**

**केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥ 10/17**

कथम् विद्याम् अहम् योगिन् त्वाम् सदा परिचिन्तयन्।

केषु केषु च भावेषु चिन्त्यः असि भगवन् मया।।

हे योगी! मैं किस प्रकार निरंतर ज्ञान—सागर—मनन—चिंतन—मंथन करता हुआ आपको पूरी रीति जान सकता हूँ और हे भगवन्! किन—2 भावों में मेरे द्वारा आप चिन्तन करने योग्य हो?

**विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।**

**भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥ 10/18**

विस्तरेण आत्मनः योगम् विभूतिम् च जनार्दन।

भूयः कथय तृप्तिः हि शृण्वतः न अस्ति मे अमृतम्।।

हे अवढरदानी शिव! अपनी इस योग शक्ति और विभूति को दुबारा विस्तार से कहिए; क्योंकि इस ज्ञानामृत को सुनते हुए मुझे तृप्ति नहीं होती। यहाँ वर्णन की गई विभूतियों में परमपिता शिव परमात्मा ज्योतिर्बिन्दु सर्वव्यापक नहीं है, उसकी यौगिक शक्ति ही उनमें व्यापक है। जगत् के सारे जड़जंगम पदार्थ छोटी—बड़ी बैटरी की भाँति हैं, जो कल्प के अंत में अवतरित परमपिता परमात्मा रूपी पावरहाउस से क्रमशः पात्रानुकूल और यथायोग्य योग की शक्ति ग्रहण करते हैं। अधिक शक्ति ग्रहण करने वाले मनु आदि भूतों/प्राणियों को ही यहाँ विभूति कहा गया है; क्योंकि वह इन सब जड़जंगम बैटरीज़ का वैरायटी बीज हैं।

**श्रीभगवानुवाचः— हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।**

**प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥ 10/19**

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या हि आत्मविभूतयः।

प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ न अस्ति अन्तः विस्तरस्य मे।।

हे कुरुश्रेष्ठ! प्रमुख—2 दिव्य अपनी विभूतियाँ तुझे आनन्दपूर्वक कहूँगा; क्योंकि मेरे विस्तार का अन्त नहीं है।

**अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।**

**अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥ 10/20**

अहम् आत्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः। अहम् आदिः च मध्यम् च भूतानाम् अन्तः एव च।।

हे निद्रा को जीतने वाले! ज्योतिर्बिन्दु शिव—शंकर मैं आत्मा सब प्राणियों की आधार रूपा योगशक्ति में स्थित हूँ और इसी यौगिक शक्ति रूप में सब प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश भी मैं ही हूँ।

**आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।**

**मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥ 10/21**

आदित्यानाम् अहम् विष्णुः ज्योतिषाम् रविः अंशुमान्।

मरीचिः मरुताम् अस्मि नक्षत्राणाम् अहम् शशी ।।  
ज्योतिमान् पदार्थों में दमकती हुई किरणों वाला सूर्य हूँ, मैं योगबल के रूप में ही आदित्यों में लक्ष्मी—नारायण का सम्मिलित स्वरूप परम पद विष्णु हूँ, मरुतों में मरीचि हूँ और नक्षत्रों में चन्द्रमा हूँ।

**वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।**

**इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥ 10/22**

वेदानाम् सामवेदः अस्मि देवानाम् अस्मि वासवः ।

इन्द्रियाणाम् मनः च अस्मि भूतानाम् अस्मि चेतना ।।

वेदों में सामवेद हूँ, देवों में ज्ञानधन दाता शिव का बड़ा पुत्र महादेव हूँ, इन्द्रियों में मस्तिष्क हूँ और सब प्राणियों में चेतना शक्ति हूँ।

**रुद्राणां शङ्करश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।**

**वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥ 10/23**

रुद्राणाम् शंकरः च अस्मि वित्तेशः यक्षरक्षसाम् ।

वसूनाम् पावकः च अस्मि मेरुः शिखरिणाम् अहम् ।।

मैं रुद्रों में शंकर और यक्ष—राक्षसों में कुबेर हूँ; अष्टदेव स्वरूप वसुओं में पतित—पावन शिव और शिखरों में मेरु हूँ।

**पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।**

**सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥ 10/24**

पुरोधसाम् च मुख्यम् माम् विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।

सेनानीनाम् अहम् स्कन्दः सरसाम् अस्मि सागरः ।।

पृथ्वीश्वर! पुरोहितों में सबसे मुख्य बृहस्पति मुझको जान। मैं सेनापतियों में कार्तिकेय और सरोवरों में समुद्र हूँ।

**महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्येकमक्षरम् ।**

**यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥ 10/25**

महर्षीणाम् भृगुः अहम् गिराम् अस्मि एकम् अक्षरम् ।

यज्ञानाम् जपयज्ञः अस्मि स्थावराणाम् हिमालयः ।।

मैं महान् ऋषियों में भृगु और वाणियों में एक ओंकार हूँ। यज्ञों में मानसिक जप रूप यज्ञ और पर्वतों में हिमालय हूँ।

**अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।**

**गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥ 10/26**

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम् देवर्षीणाम् च नारदः ।

गन्धर्वाणाम् चित्ररथः सिद्धानाम् कपिलः मुनिः ।।

सब वृक्षों में मन रूपी अश्वों में स्थिर रहने वाला मानवीय सृष्टिवृक्ष अश्वत्थ, देवर्षियों में नारद, गन्धर्वों में चित्ररथ और सिद्धों में कपिल मुनि हूँ।

**उच्चैःश्रवसमश्रानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।**

**ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ॥ 10/27**

उच्चैःश्रवसम् अश्वानाम् विद्धि माम् अमृतोद्भवम् ।

ऐरावतम् गजेन्द्राणाम् नराणाम् च नराधिपम् ।।

तू मुझको योगबल के रूप में मन रूपी अश्वों के बीच ज्ञान—अमृत मंथन से उत्पन्न हुआ उच्चैःश्रवा, श्रेष्ठ हाथियों रूपी महारथियों में ऐरावत और मनुष्यों में राजा जान।

**आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।**

**प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ 10/28**

आयुधानाम् अहम् वज्रम् धेनूनाम् अस्मि कामधुक् ।  
प्रजनः च अस्मि कन्दर्पः सर्पाणाम् अस्मि वासुकिः ॥

मैं शस्त्रों में वज्र हूँ, गायों में कामधेनु हूँ, सन्तान पैदा करने वालों में कामदेव हूँ और सर्पों में वासुकि हूँ।

**अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।**

**पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥ 10/29**

अनन्तः च अस्मि नागानाम् वरुणः यादसाम् अहम् ।  
पितृणाम् अर्यमा च अस्मि यमः संयमताम् अहम् ॥

मैं नागों में अनन्त—शेषनाग और ज्ञान जल में विचरण करने वालों में वरुण हूँ। मैं पूर्वजों में ज्ञान सूर्य और नियम पालन करने वालों में धर्मराज हूँ।

**प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ।**

**मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥ 10/30**

प्रह्लादः च अस्मि दैत्यानाम् कालः कलयताम् अहम् ।  
मृगाणाम् च मृगेन्द्रः अहम् वैनतेयः च पक्षिणाम् ॥

मैं दैत्यों में प्रह्लाद और जाने वालों में काल हूँ, ऐसे ही पशुओं में सिंह और पक्षियों में गरुड़ हूँ।

**पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।**

**झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ॥ 10/31**

पवनः पवताम् अस्मि रामः शस्त्रभृताम् अहम् ।  
झषाणाम् मकरः च अस्मि स्रोतसाम् अस्मि जाह्नवी ॥

पावन बनाने वालों में वायु हूँ, ज्ञान शस्त्र धारण करने वालों में राम हूँ। मच्छों में मगरमच्छ मत्स्यावतार हूँ और नदियों में गंगा हूँ।

**सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ।**

**अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥ 10/32**

सर्गाणाम् आदिः अन्तः च मध्यम् च एव अहम् अर्जुन ।  
अध्यात्मविद्या विद्यानाम् वादः प्रवदताम् अहम् ॥

हे सद्भाग्य का अर्जन करने वाले! सृष्टियों की आदि, मध्य और अंत मैं ही हूँ। विद्याओं में आत्मविद्या और वाद—विवाद करने वालों का मैं वाद अर्थात् सत्यरूप तर्क हूँ।

**अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च ।**

**अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ॥ 10/33**

अक्षराणाम् अकारः अस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च ।  
अहम् एव अक्षयः कालः धाता अहम् विश्वतोमुखः ॥

अक्षराणां अक्षरों में 'अ'कार और समासों में द्वन्द्व समास हूँ। अविनाशी कालचक्र हूँ और चारों ओर मुख वाला ब्रह्मा मैं ही हूँ।

**मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।**

**कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ॥ 10/34**

मृत्युः सर्वहरः च अहम् उद्भवः च भविष्यताम् ।  
कीर्तिः श्रीः वाक् च नारीणाम् स्मृतिः मेधा धृतिः क्षमा ॥

सबका लोप करने वाला महाकाल हूँ और भविष्य में उत्पन्न होने वालों का उद्गम स्थल हूँ तथा स्त्रियों की सतीत्व धर्म सम्बंधी कीर्ति, शोभा, वाणी की शक्ति, स्मरण शक्ति, समझ शक्ति, धारणाशक्ति और क्षमाशीलता मेरा ही रूप है।

**बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।**

**मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥ 10/35**

बृहत्साम तथा साम्नाम् गायत्री छन्दसाम् अहम् ।

मासानाम् मार्गशीर्षः अहम् ऋतूनाम् कुसुमाकरः ॥

उसी तरह सामवेद की ऋचाओं में बृहत्साम हूँ, छन्दों में गायत्री मंत्र हूँ; महीनों में मार्गशीर्ष महीना और ऋतुओं में बसन्त ऋतु हूँ।

**द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।**

**जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥ 10/36**

द्यूतम् छलयताम् अस्मि तेजः तेजस्विनाम् अहम् ।

जयः अस्मि व्यवसायः अस्मि सत्त्वम् सत्त्ववताम् अहम् ॥

मैं छल करने वालों का जुआ हूँ, तेजस्वियों का तेज हूँ। विजयी होने वालों की जय हूँ, व्यवसायियों का उद्यम हूँ और बलवानों का बल हूँ।

**वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः ।**

**मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ॥ 10/37**

वृष्णीनाम् वासुदेवः अस्मि पाण्डवानाम् धनञ्जयः ।

मुनीनाम् अपि अहम् व्यासः कवीनाम् उशना कविः ॥

ज्ञानवर्षा करने वाले वृष्णिवंशी यादवों में ज्ञान धनदाता वसुदेव/शिव का बड़ा पुत्र—महादेव हूँ, पाण्डवों में अर्जुन हूँ, मुनियों में मैं व्यास हूँ और कवियों में उशना शुक्राचार्य कवि भी हूँ।

**दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।**

**मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥ 10/38**

दण्डः दमयताम् अस्मि नीतिः अस्मि जिगीषताम् ।

मौनम् च एव अस्मि गुह्यानाम् ज्ञानम् ज्ञानवताम् अहम् ॥

दण्ड देने वालों का दंडाधिकार हूँ, विजयेच्छुकों की नीति हूँ, गोप—गोपियों का रक्षक मौन हूँ और ज्ञानवानों का तत्व ज्ञान मैं ही हूँ।

**यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।**

**न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥ 10/39**

यत् च अपि सर्वभूतानाम् बीजम् तत् अहम् अर्जुन ।

न तत् अस्ति विना यत् स्यात् मया भूतम् चराचरम् ॥

और हे अर्जुन! सब चर—अचर प्राणी मात्र का जो कुछ भी सारी मनुष्य—सृष्टि का मूल—बीजरूप है, वह मैं शिव—शंकर ही हूँ। वैसा एक भी चर—अचर भूत नहीं है, जो मेरे बिना हो।

**नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप ।**

**एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरः मया ॥ 10/40**

न अन्तः अस्ति मम दिव्यानाम् विभूतीनाम् परन्तप ।

एष तु उद्देशतः प्रोक्तः विभूतेः विस्तरः मया ॥

हे कामादिक शत्रुओं को तपाने वाले! मेरी दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं है। यह विभूतियों का विस्तार तो मैंने संक्षेप में कहा है

**यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।**

**तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽशसम्भवम् ॥ 10/41**

यत् यत् विभूतिमत् सत्त्वम् श्रीमत् ऊर्जितम् एव वा ।

तत् तत् एव अवगच्छ त्वम् मम तेजोऽशसम्भवम् ॥

अथवा जो भी कोई प्राणी ऐश्वर्यवान्, श्रेष्ठ बुद्धियुक्त, शक्तिवान् है, उसे ही तू मेरे योग रूपी तेज के अंश से उत्पन्न हुआ जान



अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।

विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥ 10/42

अथवा बहुना एतेन किम् ज्ञातेन तव अर्जुन ।

विष्टभ्य अहम् इदम् कृत्स्नम् एकांशेन स्थितः जगत् ॥

अथवा हे अर्जुन! तुझे इतना बहुत जानने से क्या प्रयोजन है? मैं ज्योतिर्बिन्दु शिव इस सम्पूर्ण जगत् को अपनी योगशक्ति के एक अंश द्वारा टिका करके, परमधाम में स्थित हूँ!

## अध्याय- 1 1

अर्जुन उवाच:- मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।

यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥ 11/1

मदनुग्रहाय परमम् गुह्यम् अध्यात्मसंज्ञितम् ।

यत् त्वया उक्तम् वचः तेन मोहः अयम् विगतः मम ॥

आपने मेरे ऊपर दया करके जो अध्यात्म नाम की श्रेष्ठ रहस्यमयी बात कही है, उससे मेरा यह मोह दूर हो गया है। \* गीता महाभारत में अर्जुन, दुर्योधन आदि नाम किसी एक व्यक्ति विशेष के लिए नहीं आए हैं, अपितु किसी समूह विशेष के लिए प्रयुक्त किए गए हैं। अर्जुन कोई एक नहीं था। नर से नारायण बनने वाले नंवार आठ या नौ अर्जुन हैं। भगवान ने कोई एक अर्जुन को गीता नहीं सुनाई थी। इस अध्याय में इन्हीं नारायण बनने वाले अर्जुनों को प्रजापिता ब्रह्मा के तन में, साकारी रूप धारण करने वाले परमपिता शिव सहित, सम्पूर्ण ब्रह्मा द्वारा 'विराट स्वरूप' दिखाया गया है, जिसमें उनके महाविनाश कालीन रौद्र रूप का भी वर्णन किया गया है।

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।

त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥ 11/2

भवाप्ययौ हि भूतानाम् श्रुतौ विस्तरशः मया ।

त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यम् अपि च अव्ययम् ॥

क्योंकि हे कमललोचन शिव! मैंने प्राणियों की उत्पत्ति और विनाश को आपके द्वारा विस्तारपूर्वक सुन लिया है और आपका अविनाशी माहात्म्य भी सुन लिया है।

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।

द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥ 11/3

एवम् एतत् यथा आत्थ त्वम् आत्मानं परमेश्वर ।

द्रष्टुम् इच्छामि ते रूपम् ऐश्वर्यम् पुरुषोत्तम ॥

फिर भी महेश्वर! आपने अपने विभूति स्वरूप को जैसा बताया है, यदि यह ऐसा ही है, तो हे आत्माओं में उत्तम पार्टधारी शिव! आपके ऐश्वर्यवान् उस प्रगट प्रत्यक्ष विराट रूप को देखना चाहता हूँ।

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।

योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥ 11/4

मन्यसे यदि तत् शक्यम् मया द्रष्टुम् इति प्रभो ।

योगेश्वर ततः मे त्वम् दर्शय आत्मानम् अव्ययम् ॥

हे प्रभु! यदि ऐसा आप मानते हो कि मैं उसे देख सकता हूँ, तो हे योगेश्वर शिव! आप अपने अविनाशी विभूति स्वरूप को मुझे दिखाइए।

श्रीभगवानुवाच:- पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।

नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥ 11/5

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशः अथ सहस्रशः । नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥

हे पृथ्वी के राजा! अनेक प्रकार के और अनेक वर्ण और आकार वाले सैकड़ों और हजारों मेरे पुत्र रूप दिव्य रूपों को देख।

**पश्यादित्यान्वसूक्तद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।**

**बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥ 11/6**

पश्य आदित्यान् वसून् रुद्रान् अश्विनौ मरुतः तथा ।

बहूनि अदृष्टपूर्वाणि पश्य आश्चर्याणि भारत ॥

हे भरतवंशी! 12 सूर्यरूप चक्रवर्तियों, अष्ट देवताओं, 11 रुद्रों, दो राम-कृष्ण अश्विनी कुमारों, 49 ऋषभ शिव पुत्र मरुतों को देख, उसी प्रकार पहले न देखे हुए बहुत-से आश्चर्यों को देख।

**इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।**

**मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥ 11/7**

इह एकस्थम् जगत् कृत्स्नम् पश्य अद्य सचराचरम् ।

मम देहे गुडाकेश यत् च अन्यत् द्रष्टुम् इच्छसि ॥

हे निद्राजीत अर्जुन! आज मेरी इस मनुष्य सृष्टि के बीज-रूप प्रजापति में जड़ और चेतन सहित सम्पूर्ण विश्व को एक ही जगह देख लो और जो अन्य कुछ भी देखना चाहते हो, देख लो;

**न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।**

**दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥ 11/8**

न तु माम् शक्यसे द्रष्टुम् अनेन एव स्वचक्षुषा ।

दिव्यम् ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगम् ऐश्वरम् ॥

किंतु इन्हीं अपनी जड़ आँखों से मुझ विराट स्वरूप को नहीं देख सकेगा; अतः तुझको दिव्य ज्ञान चक्षु देता हूँ, जिससे मेरे विभूतिवान और ज्योतिर्लिंग यौगिक स्वरूप का साक्षात्कार कर।

**सञ्जय उवाच:- एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ।**

**दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥ 11/9**

एवम् उक्त्वा ततः राजन् महायोगेश्वरः हरिः । दर्शयामास पार्थाय परमम् रूपम् ऐश्वरम् ॥

तब हे राजा धृतराष्ट्र! महान योगेश्वर शिव भगवान ऐसा कहकर अर्जुन को परम ऐश्वर्यवान् विभूतिरूप दिखाने लगे।

**अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।**

**अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ 11/10**

**दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।**

**सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥ 11/11**

अनेकवक्त्रनयनम् अनेकाद्भुतदर्शनम् । अनेकदिव्याभरणम् दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥

दिव्यमाल्याम्बरधरम् दिव्यगंधानुलेपनम् । सर्वाश्चर्यमयम् देवम् अनन्तम् विश्वतोमुखम् ॥

अनेक मुख और नेत्र वाले, अनेक अद्भुत दृष्टि वाले, कुण्डल आदि अनेक दिव्य गुणों के आभूषणों वाले, उठाए हुए शंख, चक्र, गदा आदि अनेक ज्ञान-आयुधों वाले, दिव्य मालाएँ और वस्त्र धारण करने वाले, दिव्य गंधों से अनुलिप्त, सब आश्चर्यों से भरे हुए, चारों ओर मुख वाले विराट स्वरूप अनन्त देवताओं को देखा।

**दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।**

**यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥ 11/12**

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेत् युगपत् उत्थिता ।

यदि भाः सदृशी सा स्यात् भासः तस्य महात्मनः ॥

यदि आकाश में हजारों सूर्यों की कान्ति एक साथ उदित हो, तो वह कान्ति उस महान आत्मा के समान हो सकती है। {अतिशयोक्ति अलंकार}

**तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।**

**अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥ 11/13**

तत्र एकस्थम् जगत् कृत्स्नम् प्रविभक्तम् अनेकधा । अपश्यत् देवदेवस्य शरीरे पाण्डवः तदा ।।

तब अर्जुन ने देव देव महादेव शिव-शंकर के उस विराट शरीर में अनेक प्रकार के रूपों में बँटे हुए सम्पूर्ण जगत् को एक ही चैतन्य बीज में स्थित हुआ देखा ।

**ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः ।**

**प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ॥ 11/14**

ततः स विस्मयाविष्टः हृष्टरोमा धनञ्जयः । प्रणम्य शिरसा देवम् कृताञ्जलिः अभाषत ।।

तब वह आश्चर्य में भरकर रोमांचित होने वाला ज्ञानधनजयी अर्जुन शिवशंकर महादेव को मस्तक द्वारा प्रणाम करके हाथ जोड़ते हुए कहने लगा ।

**अर्जुन उवाचः- पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान् ।**

**ब्रह्माण्मीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥ 11/15**

पश्यामि देवान् तव देव देहे सर्वान् तथा भूतविशेषसंघान् ।

ब्रह्माण्म ईशम् कमलासनस्थम् ऋषीन् च सर्वान् उरगान् च दिव्यान् ।।

हे देव! आपके शरीर में सब देवताओं को तथा प्राणियों के विशिष्ट समुदायों को, एक शरीर में कमल आसन पर बैठे महेश्वर शिव और ब्रह्मा को, सब ब्रह्मर्षियों को और सब दिव्य सर्प रूप सन्यासियों को देखता हूँ । \*उरग उरसा गच्छति-छाती के बल चलने वाले सर्प रूप सन्यासी, जो मुख द्वारा अज्ञान रूपी विष उगलते हैं और एक स्थान से दूसरे स्थान को सरक जाते हैं । दूसरों द्वारा बनाए हुए घरों में रहते हैं ।

**अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।**

**नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥ 11/16**

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रम् पश्यामि त्वां सर्वतः अनन्तरूपम् ।

न अंतम् न मध्यम् न पुनः तव आदिम् पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूपम् ।।

अनेक ब्राह्मण रूपी ज्ञान नेत्र वाले, अनेक देवता रूप मुख वाले, अनेक क्षत्रिय रूप भुजाओं वाले और अनेक वैश्यों रूपी पेट वाले अर्थात् सब ओर से अनन्त रूपों वाले, आपका साक्षात्कार करता हूँ । हे विश्व के शासनकर्ता! हे विश्वरूप! फिर भी मैं आपके न अंत को, न मध्य को, न आदि को ही देख पाता हूँ ।

**किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।**

**पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥ 11/17**

किरीटिनम् गदिनम् चक्रिणम् च तेजोराशिम् सर्वतः दीप्तिमन्तम् ।

पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यम् समन्तात् दीप्तानलार्कद्युतिम् अप्रमेयम् ।।

आप पवित्रता की जिम्मेवारी के ताज अर्थात् मुकुटधारी, दृढ़ता रूपी गदाधारी, 84 जन्मों के ज्ञान चक्रधारी और योग रूपी तेज के पुंज रूप चारों ओर से प्रकाशमान हैं । चारों ओर से कठिनाई से देखने योग्य, दैदीप्यमान अग्नि और सूर्य की प्रभा वाले, उपमाहीन आपको मैं देख रहा हूँ ।

**त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।**

**त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥ 11/18**

त्वम् अक्षरम् परमम् वेदितव्यम् त्वम् अस्य विश्वस्य परम् निधानम् ।

त्वम् अव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनः त्वम् पुरुषः मतः मे ।।

आप ऑलराउण्ड पार्टधारी अविनाशी परम पद विष्णु स्वरूप हैं और जानने योग्य हैं । आप इस जगत् के परम आश्रय-जगन्नाथ हैं । आप आत्मिक रूप से क्षय रहित और शाश्वत काल तक रहने वाले देवी-देवता सनातन धर्म के रक्षक हैं । अतः मेरी मान्यता है कि आप सनातन पुरुष आदम या आदिदेव हैं ।

**अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।**

**पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥ 11/19**

अनादिमध्यान्तम् अनन्तवीर्यम् अनन्तबाहुम् शशिसूर्यनेत्रम् ।

पश्यामि त्वाम् दीप्तहुताशवक्त्रम् स्वतेजसा विश्वम् इदम् तपन्तम् ॥

आदि, मध्य और अंत से रहित, अमोघ वीर्य वाले, असंख्य क्षत्रियों रूपी भुजाओं वाले, ब्रह्मा रूपी चंद्रमा और ज्ञानसूर्य परमपिता शिव रूप नेत्रों वाले और महाविनाशकालीन धधकती हुई रुद्र ज्ञान अग्नि रूप मुख वाले, आपको अपने तेज से इस कलियुगी संसार को तपाता हुआ देख रहा हूँ।

**द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।**

**दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥ 11/20**

द्यावापृथिव्योः इदम् अन्तरम् हि व्याप्तम् त्वया एकेन दिशः च सर्वाः ।

दृष्ट्वा अद्भुतम् रूपम् उग्रम् तव इदम् लोकत्रयम् प्रव्यथितम् महात्मन् ॥

परमधाम और पृथ्वी का यह बीच वाला सारा सात्त्विक अन्तराल—वायुमंडल और अंतरिक्ष और सारी दिशाएँ अकेले आपके द्वारा ही विस्तीर्ण हुई हैं। आपका यह अद्भुत, भयंकर विनाशकारी रूप देखकर, हे महात्मन्! शांतिधाम, सुखधाम और दुःखधाम आदि तीनों लोकों के सारे जीव अत्यंत काँप रहे हैं।

**अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति केचिद्धीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।**

**स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥ 11/21**

अमी हि त्वाम् सुरसंघा विशन्ति केचित् भीताः प्राञ्जलयः गृणन्ति ।

स्वस्ति इति उक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः स्तुवन्ति त्वाम् स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥

वास्तव में, ये ज्ञानी ब्राह्मण देवों के समूह आपके समूचे विराट रूप में समा जाते हैं अर्थात् सृष्टि का सारा ज्ञान पाते हैं, जबकि न पहचानने वाले कुछ अज्ञानी भक्त लोग भयभीत हुए हाथ जोड़कर 'अहो! प्रभो तेरी माया' का गुणगान ही करते रहते हैं। द्वापरयुगी महर्षियों और सिद्धों के समूह 'कल्याण हो' ऐसी शुभ भावना व कामना वाली वाणी कहकर आपकी अनेक स्तुतियों द्वारा स्तुति ही करते रह जाते हैं।

**रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।**

**गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥ 11/22**

रुद्रादित्या वसवः ये च साध्या विश्वे अश्विनौ मरुतः च ऊष्मपाः च ।

गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा वीक्षन्ते त्वाम् विस्मिताः च एव सर्वे ॥

जो 11 रुद्रगण और 12 सूर्यरूप चक्रवर्ती, अष्टदेव और प्रत्येक देव, 13 विश्वदेव, दो अश्विनी कुमार, 49 मरुद्गण और केवल योग रूपी ताप को पीने वाले पितृ \*त्रेतायुगी आत्माओं को पितृ कहा जाता है; क्योंकि संगमयुग के आदि में यही क्षत्रिय आत्माएँ सम्पूर्ण पवित्रता में असफल हो जाने से उग्र तपस्वी होने के कारण नई सतयुगी पीढ़ी के माँ-बाप बनते हैं। और द्वापरयुगी ऋक्-साम छन्दों को गाने वाले गन्धर्व और यक्षजन तथा कलियुगी दुःखदाई राक्षस और रिद्धि-सिद्धि जानने वालों के समूह, ये सब आपके रौद्र स्वरूप को ही आश्चर्यान्वित हुए देख रहे हैं।

**रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।**

**बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥ 11/23**

रूपम् महत् ते बहुवक्त्रनेत्रम् महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।

बहूदरम् बहुदंष्ट्राकरालम् दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथिताः तथा अहम् ॥

हे विशाल बुद्धि रूपी हाथों वाले! अनेक ब्राह्मणों—देवों रूपी मुख और ज्ञाननेत्र वाले, अनेक क्षत्रिय रूपी भुजाओं, वैश्य रूपी जंघाओं और शूद्र रूपी पैरों वाले, अनेकों वैश्य रूपी पेट वाले और अनेकानेक अणु-बम्बादि विनाश के साधन रूप विकराल दाढ़ों वाले, आपके महान् रौद्र रूप को देखकर सब लोग तथा मैं भी काँप रहा हूँ।

**नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।**

**दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ॥ 11/24**

नभःस्पृशम् दीप्तम् अनेकवर्णम् व्यात्ताननम् दीप्तविशालनेत्रम् ।

दृष्ट्वा हि त्वाम् प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिम् न विन्दामि शमम् च विष्णो ॥

क्योंकि हे विषय वासना रहित विष्णुदेव! आकाश को छूने वाले, अनेक रंगों में दमकने वाले, मुख फाड़ते हुए, बड़ी-2 चमकती आँखों वाले, तेरे प्रलयकालीन रौद्र रूप को देखकर अत्यंत भय से पीड़ित हुई अन्तरात्मा वाला मैं धीरज और शांति नहीं पाता हूँ।

**दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।**

**दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ 11/25**

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वा एव कालानलसन्निभानि ।

दिशः न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥

हे देवों के ईश महादेव! महाविनाशकालीन अणु-बम्बादि भयंकर साधनों की विकराल दाढ़ों वाले और प्रलयकालीन अग्नि के समान प्रज्वलित आग उगलने वाले आपके मुखों को देखकर ही दिशाओं को भी भूल गया हूँ और चैन नहीं पड़ता। अतः हे संसार के आश्रय रूप जगन्नाथ! प्रसन्न हो जाइए।

**अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसङ्घैः ।**

**भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीवैरपि योधमुख्यैः ॥ 11/26**

अमी च त्वाम् धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सह एव अवनिपालसंघैः ।

भीष्मः द्रोणः सूतपुत्रः तथा असौ सह अस्मदीयैः अपि योधमुख्यैः ॥

हमारे मुख्य योद्धाओं सहित, ये पूंजीपतियों के कौरवों अर्थात् कांग्रसियों रूपी पुत्र और सर्प की तरह अज्ञान विष उगलने वाले भयंकर कलियुगी साधू-सन्ध्यासी रूपी भीष्म, कलियुगी विद्वान-आचार्य, उसी तरह यह सारथी का पुत्र कर्ण-ये सब पृथ्वी को पालने वाले कलियुगी शासकों का समूह

**वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।**

**केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु सन्दृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥ 11/27**

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।

केचित् विलग्नाः दशनान्तरेषु सन्दृश्यन्ते चूर्णितैः उत्तमाङ्गैः ॥

आपके विकराल दाढ़ों वाले भयंकर मुखों में तीव्रतापूर्वक घुसे जा रहे हैं। कुछ लोग दाँतों के बीच में फँस जाने से चूर-2 हुए सिरों के साथ अच्छी तरह दिखाई पड़ रहे हैं।

**यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।**

**तथा तवामी नरलोकवीरा विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥ 11/28**

यथा नदीनाम् बहवः अम्बुवेगाः समुद्रम् एव अभिमुखाः द्रवन्ति ।

तथा तव अमी नरलोकवीरा विशन्ति वक्त्राणि अभिविज्वलन्ति ॥

जैसे नदियों की अनेक जलधाराएँ समुद्र की ओर ही मुँह उठाए दौड़ती हैं, वैसे ही ये मनुष्यलोक के वीर पुरुष भी आपके चारों ओर से धधकते हुए मुखों में प्रवेश कर रहे हैं।

**यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।**

**तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥ 11/29**

यथा प्रदीप्तम् ज्वलनम् पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।

तथा एव नाशाय विशन्ति लोकाः तव अपि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥

जैसे पतंगे दहकती हुई अग्नि में मरने के लिए झपटकर जा गिरते हैं, वैसे ही लोग भी अपने विनाश के लिए झपटते हुए आपके मुखों में चले जा रहे हैं।

**लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।**

**तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥ 11/30**

लेलिह्यसे ग्रसमानः समंतात् लोकान् समग्रान् वदनैः ज्वलद्भिः।  
तेजोभिः आपूर्य जगत् समग्रम् भासः तव उग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥

हे विषय विकारों विहीन महादेव! जलते हुए मुखों से सब लोगों को चारों ओर से निगलते हुए चाट रहे हैं। आपकी भयंकर ज्वालाएँ सारे संसार को तेज से भरती हुई तीव्रता से जला रही हैं।

**आख्याहि मे को भवानुग्ररूपोनमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।**

**विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥ 11/31**

आख्याहि मे कः भवान् उग्ररूपः नमः अस्तु ते देववर प्रसीद।  
विज्ञातुम् इच्छामि भवंतम् आद्यम् न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥

हे देवताओं में श्रेष्ठ महादेव! मुझे बताइए कि ऐसे भयंकर रूप वाले आप कौन हैं? आपको प्रणाम है। प्रसन्न हो जाइए। आपके आदिकालीन रूप को जानना चाहता हूँ; क्योंकि आपके क्रियाकलाप को मैं नहीं जानता हूँ।

**श्रीभगवानुवाच:- कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।**

**ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥ 11/32**

कालः अस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धः लोकान् समाहर्तुम् इह प्रवृत्तः।  
ऋतेऽपि त्वाम् न भविष्यन्ति सर्वे ये अवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥

संसार का महाविनाश करने वाला महाकाल मैं हूँ और कलियुग के अंतकालीन इस संगमयुग में सतयुगी लोगों को संगठित करने के लिए लगा हुआ हूँ। परस्पर विरोधी सम्प्रदायों रूपी सेनाओं में जो वाद-विवाद करने वाले योद्धा खड़े हैं, वे सब तेरे धर्मयुद्ध न करने पर भी नहीं बचेंगे;

**तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ।**

**मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥ 11/33**

तस्मात् त्वम् उत्तिष्ठ यशः लभस्व जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यम् समृद्धम्।  
मया एव एते निहताः पूर्वम् एव निमित्तमात्रम् भव सव्यसाचिन् ॥

इसलिए तू उठ खड़ा हो, कीर्ति प्राप्त कर और कामादिक शत्रुओं को जीतकर धन-सम्पत्ति से भरपूर स्वर्गीय राज्य का भोग कर। ये कामक्रोधादि के साकार रूप दुर्योधनादि पूर्व कल्प में भी मेरे द्वारा मारे गए थे, अतः इस बार भी विनाशकारी बाएँ हाथ से सरसंधान करने वाले हे अर्जुन! तू केवल निमित्त मात्र बन जा।

**द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथान्यानपि योधवीरान् ।**

**मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥ 11/34**

द्रोणम् च भीष्मम् च जयद्रथम् च कर्णम् तथा अन्यान् अपि योधवीरान्।  
मया हतान् त्वम् जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥

शास्त्रज्ञान सिखाने वाले विद्वान-आचार्य और सर्प की तरह भयंकर सन्यासी तथा भौतिक शरीर रूपी रथ की शक्ति से जीत पाने वाले देहाभिमानी यवन और कर्ण, उसी तरह मेरे द्वारा पहले से ही मारे गए दूसरे भी वीर योद्धाओं को तुम मार डालो। डरो मत इन पापियों के पापों से धर्मयुद्ध करो; क्योंकि तुम्हीं धर्मयुद्ध में कामादिक शत्रुओं को जीतने वाले हो।

**सञ्जय उवाच:- एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी ।**

**नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥ 11/35**

एतत् श्रुत्वा वचनम् केशवस्य कृताञ्जलिः वेपमानः किरीटी।  
नमस्कृत्वा भूय एव आह कृष्णम् सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥

सुन्दर ज्ञान केश वाले परमेश्वर शिव की इस बात को सुनकर ताजधारी अर्जुन ने काँपते हुए हाथ जोड़कर नमस्कार किया और फिर भयभीत हुआ प्रणाम करके रूँधी हुई वाणी में आकर्षणमूर्त शिव से कहा।

**अर्जुन उवाचः— स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।**

**रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः ॥ 11/36**

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत् प्रहृष्यति अनुरज्यते च ।

रक्षांसि भीतानि दिशः द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥

हे मेरे इन्द्रियों रूपी घोड़ों के स्वामी! यह ठीक ही है कि आपके उत्तम गुणगान से विश्व प्रसन्न होता है और उसमें प्रीति रखता है। डरे हुए कामादिक राक्षस दिशाओं में भाग रहे हैं और सब सिद्धों के समूह प्रणाम कर रहे हैं।

**कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मनारीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।**

**अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥ 11/37**

कस्मात् च ते न नमेरन् महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणः अपि आदिकर्त्रे ।

अनन्त देवेश जगन्निवास त्वम् अक्षरम् सत् असत् तत्परम् यत् ॥

हे परमात्मन्! हे अन्तरहित गुणों वाले! देवाधिदेव महादेव! हे जगत् के आधार स्वरूप शिवशंकर! ब्रह्मा के भी प्रथम रचयिता और सबके गुरु, आपको वे कैसे नमस्कार नहीं करेंगे? क्योंकि अविनाशी, सत्य, असत्य और उन दोनों से परे जो है, वह आप हो।

**त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।**

**वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥ 11/38**

त्वम् आदिदेवः पुरुषः पुराणः त्वम् अस्य विश्वस्य परम् निधानम् ।

वेत्ता असि वेद्यम् च परम् च धाम त्वया ततम् विश्वम् अनन्तरूप ॥

आप सब देवों से भी प्रथम देवादिदेव शिवशंकर महादेव, पुरातन पुरुष हो। आप इस जगत् के परम आश्रय हो और सब कुछ जानने वाले हो तथा जानने योग्य हो। परे ते परे धाम वाले! हे अनंतगुण रूप! जगत् बीज से वृक्ष की तरह आपके द्वारा विस्तृत हुआ है।

**वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।**

**नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥ 11/39**

वायुः यमः अग्निः वरुणः शशांकः प्रजापतिः त्वम् प्रपितामहः च ।

नमः नमः ते अस्तु सहस्रकृत्वः पुनः च भूयः अपि नमः नमः ते ॥

वायुदेव, यमदेव, अग्निदेव, वरुणदेव, चंद्रमा, प्रजापिता ब्रह्मा और उनके भी पितामह अर्थात् शिवबाबा रूप डाडे आप हो; अतः आपको हजारों बार नमस्कार! नमस्कार हो!! और फिर भी आपको बारम्बार नमस्कार हो।

**नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।**

**अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥ 11/40**

नमः पुरस्तात् अथ पृष्ठतः ते नमः अस्तु ते सर्वत एव सर्व ।

अनन्तवीर्यं अमितविक्रमः त्वम् सर्वम् समाप्नोषि ततः असि सर्वः ॥

आपको सामने से और पीछे से नमस्कार है। हे सब कुछ! आपको सब ओर से ही नमस्कार हो। हे अमोघ वीर्यवान शिवशंकर! आप अनन्त पराक्रमशील हो; सबमें योगशक्ति रूप से फैले हुए हो, इसलिए सब कुछ हो।

**सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।**

**अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥ 11/41**

सखा इति मत्वा प्रसभम् यत् उक्तम् हे कृष्ण हे यादव हे सखे इति ।

अजानता महिमानम् तव इदम् मया प्रमादात् प्रणयेन वा अपि ॥

आपकी इस महिमा को न जानते हुए आपको अपना सखा मानकर प्रमाद के कारण अथवा प्रेम के कारण भी मेरे द्वारा 'हे आत्माओं को आकृष्ट करने वाले शिव! हे विदेशी बनकर आए यदुवंशी यादव! हे सदा साथ रहने वाले सखा!' इस प्रकार जो कुछ तिरस्कारपूर्वक कहा हो,

**यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु ।**

**एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥ 11/42**

यत् च अवहासार्थम् असत्कृतः असि विहारशय्यासनभोजनेषु ।

एकः अथवा अपि अच्युत तत्समक्षम् तत् क्षामये त्वाम् अहम् अप्रमेयम् ॥

और कभी खेल में, बिस्तर पर लेटे हुए या बैठे हुए या भोजन के समय, अकेले में अथवा दूसरों के सामने हँसी-मजाक में भी जो असम्मान किया हो, उसके लिए हे अव्यक्त भाव अर्थात् ऊँची स्टेज से कभी भी विचलित न होने वाले! जगत से न्यारे शिवबाबा! आपसे मैं क्षमा माँगता हूँ।

**पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।**

**न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥ 11/43**

पिता असि लोकस्य चराचरस्य त्वम् अस्य पूज्यः च गुरुः गरीयान् ।

न त्वत्समः अस्ति अभ्यधिकः कुतः अन्यः लोकत्रये अपि अप्रतिमप्रभाव ॥

आप इस चेतन और जड़ जगत् के बीजरूप पिता हो और इस जगत् के पूजनीय सर्वश्रेष्ठ गुरु अर्थात् सच्चे जगद्गुरु हो। हे अनुपम प्रभाव वाले! आदि, मध्य, अंतकालीन पारलोक, स्वर्ग, नरकादि तीनों लोकों में आपके समान भी कोई नहीं है, तो दूसरा कोई आप से बढ़कर कहाँ से होगा?

**तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीश्वम् ।**

**पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥ 11/44**

तस्मात् प्रणम्य प्रणिधाय कायम् प्रसादये त्वाम् अहम् ईशम् ईश्वम् ।

पिता इव पुत्रस्य सखा इव सख्युः प्रियः प्रियायाः अर्हसि देव सोढुम् ॥

इसलिए शरीर को भली-भाँति अर्पण करते हुए खूब नम्र होकर गुणगान करने योग्य आप ईश्वर को मैं प्रसन्न करता हूँ। हे शिवशंकर महादेव! जैसे पिता पुत्र के, मित्र, मित्र के और पति पत्नी के अपराधों को क्षमा करता है, उसी भाँति आप मेरे अपराधों को सहन करने में समर्थ हो।

**अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।**

**तदेव मे दर्शय देवरूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ 11/45**

अदृष्टपूर्वम् हृषितः अस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितम् मनः मे ।

तत् एव मे दर्शय देव रूपम् प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥

पहले कभी न देखे हुए इन बुद्धिगत् साक्षात्कारों को देखकर हर्षित हुआ हूँ, फिर भी भय से मेरा मन अत्यन्त व्याकुल हो गया है; अतः हे शिवशंकर महादेव! वही रूप मुझे दिखाइए। हे देवों के ईश्वर महादेव! जगत के आधार! प्रसन्न हो जाइए।

**किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।**

**तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥ 11/46**

किरीटिनम् गदिनम् चक्रहस्तम् इच्छामि त्वाम् द्रष्टुम् अहं तथैव ।

तेन एव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥

स्वर्ग की जिम्मेवारी के ताजधारी, दृढ़ता रूपी गदाधारी, बुद्धि रूपी हाथ में स्व-दर्शन चक्रधारी आपको उसी तरह देखने की मैं इच्छा करता हूँ। हे हजार सहयोगी भुजाओं वाले! विराट्-विश्वरूप! और हे ब्रह्मा, सरस्वती, जगदम्बा, पार्वती रूपी चार आत्माओं के रूप में सहयोगी भुजा वाले! उसी साकार रूप में प्रगट हो जाइए।

**श्रीभगवानुवाचः— मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ।**

**तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥ 11/47**

मया प्रसन्नेन तव अर्जुन इदम् रूपम् परम् दर्शितम् आत्मयोगात् ।



तेजोमयम् विश्वम् अनन्तम् आद्यम् यत् मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥

हे अर्जुन! श्रेष्ठ तेजोमय सतयुग के आदिकालीन अनन्तगुणरूप यह विश्व रूप मैंने अपने योगबल से प्रसन्नपूर्वक तुमको दिखाया है, मेरा जो रूप तेरे आदम/एडम या आदिदेव के अलावा और किसी ने पहले नहीं देखा है।

**न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।**

**एवंरूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥ 11/48**

न वेदयज्ञाध्ययनैः न दानैः न च क्रियाभिः न तपोभिः उग्रैः।

एवंरूपः शक्यः अहम् नृलोके द्रष्टुम् त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥

हे कुरुकुलवीर! ऐसे रूप वाला मैं न वेद, यज्ञ और स्वाध्याय से, न दान से, न कर्मकाण्ड की क्रियाओं द्वारा और न कठोर शरीर की तपस्याओं से तेरे अतिरिक्त कोई दूसरा इस मनुष्य लोक में देखने को समर्थ है।

**मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृक्चमेदम् ।**

**व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥ 11/49**

मा ते व्यथा मा च विमूढभावः दृष्ट्वा रूपम् घोरम् ईदृक् मम इदम्।

व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनः त्वम् तत् एव मे रूपम् इदम् प्रपश्य ॥

मेरा ऐसा यह प्रलयकारी शंकर का भयंकर रूप देखकर तू मत घबरा और न किंकर्तव्यविमूढ़ हो। भय त्याग कर प्रसन्न मन वाला तू फिर से मेरे उस ही इस रूप को देख।

**सञ्जय उवाचः— इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।**

**आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥ 11/50**

इति अर्जुनम् वासुदेवःवासुदेवः तथा उक्त्वा स्वकम् रूपम् दर्शयामास भूयः।

आश्वासयामास च भीतम् एनम् भूत्वा पुनः सौम्यवपुः महात्मा ॥

इस तरह ज्ञान धन—सम्पत्ति देने वाले शिवबाबा ने सद्भाग्य अर्जन करने वाले अर्जुन को इस तरह कह कर पुनः अपना रूप दिखाया और फिर शांत रूप होकर महान् आत्मा ने भयभीत हुए इस अर्जुन को आश्वासन दिया।

**अर्जुन उवाचः— दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।**

**इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥ 11/51**

दृष्ट्वा इदम् मानुषम् रूपम् तव सौम्यम् जनार्दन।

इदानीम् अस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिम् गतः ॥

हे मनुष्यों का आर्तनाद सुनने वाले शिवबाबा! आपका यह चंद्र जैसा शांत मनुष्य की आकृति वाला आदिमानव आदम स्वरूप देखकर अब सचेत हुआ हूँ और अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ गया हूँ।

**श्रीभगवानुवाचः— सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।**

**देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः ॥ 11/52**

सुदुर्दर्शम् इदम् रूपम् दृष्टवान् असि यत् मम।

देवा अपि अस्य रूपस्य नित्यम् दर्शनकाङ्क्षिणः ॥

मेरे जिस रूप को तूने तीसरे ज्ञान नेत्र से देखा है, उसे देख पाना बहुत कठिन है। सब देव भी सदैव इस रूप को देखने के लिए लालायित रहते हैं।

**नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।**

**शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥ 11/53**

न अहम् वेदैः न तपसा न दानेन न च इज्यया।

शक्य एवंविधः द्रष्टुम् दृष्टवान् असि माम् यथा ॥

इस भाँति मुझको जिस रूप में तूने देखा है, उस रूप में मुझे न वेदों द्वारा, न तपस्या द्वारा, न दान द्वारा और न यज्ञ द्वारा ही देखा जा सकता है; • यज्ञ—तप—दान आदि करने से मैं अर्थात् भगवान का यथार्थ रूप नहीं मिलता हूँ। मु.8.2.68 पृ.3 मध्यादि

**भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवविधोऽर्जुन ।**

**ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥ 11/54**

भक्त्या तु अनन्यया शक्य अहम् एवंविधः अर्जुन ।

ज्ञातुम् द्रष्टुम् च तत्त्वेन प्रवेष्टुम् च परंतप ॥

किंतु कामादिक शत्रुओं को तपाने वाले हे अर्जुन! अव्यभिचारी भावना के द्वारा मैं इस भाँति सम्पूर्ण रूप में जानने—पहचानने, तीसरे ज्ञान नेत्र से साक्षात्कार करने और तत्त्वपूर्वक गहराई तक प्रवेश पाने के भी योग्य हूँ। तात्पर्य है कि अव्यभिचारी ज्ञान व याद से ही परमात्मा की पूरी पहचान होती है।

**मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।**

**निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥ 11/55**

मत्कर्मकृतं मत्परमः मद्भक्तः संगवर्जितः । निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स माम् एति पाण्डव ॥

व्यक्त परमधाम रूपी महातीर्थ माउण्ट आबू में यात्रियों को इकट्ठा करने वाले हे पण्डा शिव परमपिता के पुत्र! जो मेरे अर्थात् रुद्र यज्ञ रूप के निमित्त कर्म करता है, मुझे परमगति मानता है, अन्य संगों को त्यागते हुए मुझे भजता है, वह सब प्राणियों में वैरहीन हुआ मुझको प्राप्त करता है।

## अध्याय- 12

**अर्जुन उवाचः— एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।**

**ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥ 12/1**

एवम् सततयुक्ता ये भक्ताः त्वाम् पर्युपासते ।

ये च अपि अक्षरम् अव्यक्तम् तेषाम् के योगवित्तमाः ॥

इस प्रकार सदा योगयुक्त हुए जो भक्तजन साकार सौम्य स्वरूप वाले आपकी सब प्रकार से उपासना करते हैं और जो अविनाशी अव्यक्त अति सूक्ष्म ज्योतिर्लिंगम् स्वरूप को ही याद करते हैं, उसमें कौन योग के मर्म को अधिक जानते हैं?

**श्रीभगवानुवाचः— मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।**

**श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥ 12/2**

मयि आवेश्य मनः ये माम् नित्ययुक्ता उपासते ।

श्रद्धया परया उपेताः ते मे युक्ततमा मताः ॥

जो मुझमें मन को स्थिर करके सदा योगयुक्त हुए, परम श्रद्धा से भरकर मुझ साकार शंकर में निराकार शिव को याद करते हैं, वे मेरे सब योगियों में श्रेष्ठतम माने गए हैं;

**ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।**

**सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ 12/3**

ये तु अक्षरम् अनिर्देश्यम् अव्यक्तम् पर्युपासते ।

सर्वत्रगम् अचिन्त्यम् च कूटस्थम् अचलम् ध्रुवम् ॥

किंतु जो योगी अविनाशी, अनिर्वचनीय, संकल्पशक्ति से सब जगह पहुँचने वाले, सबके द्वारा चिंतन न करने योग्य, परमधाम रूपी शिखर पर स्थित रहने वाले, अचल, नित्य और अव्यक्त सूक्ष्म ज्योतिर्लिंग शिव को याद करते हैं,

**सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।**

**ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ 12/4**

संनियम्य इन्द्रियग्रामम् सर्वत्र समबुद्धयः । ते प्राप्नुवन्ति माम् एव सर्वभूतहिते रताः ॥  
वे योगी सब इन्द्रियों को संयम में रखकर सब परिस्थितियों में एकरस हुए, सब प्राणियों के कल्याण में लगे रहने वाले मुझको ही प्राप्त होते हैं ।

**क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।**

**अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्विरवाप्यते ॥ 12/5**

क्लेशः अधिकतरः तेषाम् अव्यक्तासक्तचेतसाम् ।

अव्यक्ता हि गतिः दुःखम् देहवदभिः अवाप्यते ॥

अव्यक्त सूक्ष्म ज्योतिर्बिंदु स्वरूप में आसक्त हुए चित्त वाले उन योगियों को कठिनाई अधिक होती है; क्योंकि देहधारियों के द्वारा निराकारी गति अर्थात् स्थिति दुःखपूर्वक प्राप्त होती है;

**ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्पराः ।**

**अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ 12/6**

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्पराः । अनन्येन एव योगेन माम् ध्यायन्त उपासते ॥

किंतु मेरे परायण हुए जो योगी सब कर्मों को मुझ यज्ञ पिता में समर्पण करके अव्यभिचारी याद से चिन्तन करते हुए मुझको ही याद करते हैं,

**तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।**

**भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ 12/7**

तेषाम् अहम् समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् । भवामि नचिरात् पार्थ मयि आवेशितचेतसाम् ॥

उन मेरे में मन-बुद्धि केंद्रित करने वालों का, हे पृथ्वीपति! मृत्युसंसारसागर से मैं अति शीघ्र उद्धार करने वाला हूँ ।

**मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।**

**निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥ 12/8**

मयि एव मन आधत्स्व मयि बुद्धिम् निवेशय ।

निवसिष्यसि मयि एव अत ऊर्ध्वम् न संशयः ॥

मेरे स्वरूप में ही मन लगा, मेरे में बुद्धि को स्थिर कर; इस प्रकार ऊर्ध्व लोक में स्थित मेरे निराकारी स्वरूप में ही निवास करेगा, इसमें कोई संदेह नहीं है ।

**अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।**

**अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय ॥ 12/9**

अथ चित्तम् समाधातुम् न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।

अभ्यासयोगेन ततः माम् इच्छ आप्तुम् धनञ्जय ॥

हे ज्ञानधन जीतने वाले! यदि मेरे अव्यक्त रूप में मन-बुद्धि को स्थिरता पूर्वक लगाने में समर्थ नहीं हैं, तो बारम्बार स्मृति के अभ्यास रूपी योग द्वारा मुझको पाने की इच्छा कर ।

**अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।**

**मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ 12/10**

अभ्यासे अपि असमर्थः असि मत्कर्मपरमः भव ।

मदर्थम् अपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिम् अवाप्स्यसि ॥

बार-2 की स्मृति रूप अभ्यास में भी समर्थ न हो तो मुझ यज्ञपिता रूप के प्रति कर्म करने वाला हो । मेरे लिए अलौकिक कर्मों को करता हुआ भी विष्णु रूप सिद्धि को पा लेगा ।

**अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।**

**सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥ 12/11**

अथ एतत् अपि अशक्तः असि कर्तुम् मद्योगम् आश्रितः ।

सर्वकर्मफलत्यागम् ततः कुरु यतात्मवान् ॥

यदि इतना भी करने में अशक्त हो, तो मेरे अनुशासित सर्व सम्बंधों की शरण लेकर अपने को वश में करता हुआ लौकिक सब कर्मफलों का त्याग कर दे।

**श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।**

**ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥ 12/12**

श्रेयः हि ज्ञानम् अभ्यासात् ज्ञानात् ध्यानम् विशिष्यते ।

ध्यानात् कर्मफलत्यागः त्यागात् शान्तिः अनन्तरम् ॥

ज्ञानरहित अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान से ज्ञान का मंथन विशेष है, मनन—चिंतन रूप ध्यान से ईश्वरीय सेवा के कर्मफल का त्याग श्रेष्ठ है; क्योंकि फलाशा का त्याग करने के तुरंत बाद शांति प्राप्त हो जाती है।

**अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।**

**निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ 12/13**

**सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।**

**मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ 12/14**

अद्वेष्टा सर्वभूतानाम् मैत्रः करुण एव च ।

निर्ममः निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥

संतुष्टः सततम् योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।

मयि अर्पितमनोबुद्धिः यः मद्भक्तः स मे प्रियः ॥

जो पुरुष सब प्राणियों में बैर छोड़कर मित्रता और दयाभाव वाला है तथा ममताहीन है, निरहंकारी है, दुःख—सुख में समान रहता है, क्षमावान् है, संतोषी है, सदा योगी है, अपने को वश में रखता है, अटल निश्चय वाला है, ऐसा मेरे में मन—बुद्धि को अर्पण करने वाला मेरा भक्त मुझे प्यारा लगता है।

**यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।**

**हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ 12/15**

यस्मात् न उद्विजते लोकः लोकात् न उद्विजते च यः ।

हर्षामर्षभयोद्वेगैः मुक्तः यः स च मे प्रियः ॥

जिससे संसार परेशान नहीं होता और जो संसार से परेशान नहीं होता और जो आनन्द, क्रोध, भय और चिंताओं से मुक्त है— वह पुरुष मुझे प्रिय है।

**अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।**

**सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ 12/16**

अनपेक्षः शुचिः दक्षः उदासीनः गतव्यथः । सर्वारम्भपरित्यागी यः मद्भक्तः स मे प्रियः ॥

जो पुरुष 'एक शिवबाबा' दूसरा न कोई की अपेक्षा आशा नहीं करने वाला, पवित्र, कार्यकुशल, पक्षपातरहित, अपनी मानसिक व्यथाओं से रहित और सब प्रकार के लौकिक कार्यों का त्याग करने वाला है, ऐसा मेरा भक्त मुझे प्रिय है।

**यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।**

**शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥ 12/17**

यः न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।

शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः ॥

जो पुरुष न प्रसन्न होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न इच्छा करता है और जो भले और बुरे, दोनों का परित्याग करने वाला श्रद्धाभक्ति से युक्त है, ऐसा मेरा भक्त मुझे प्रिय है।

**समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।**

**शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥ 12/18**

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मानी सन्तुष्टो येन केनचित् ।

**अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥ 12/19**

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।  
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥  
तुल्यनिन्दास्तुतिः मौनी संतुष्टः येन केनचित् ।  
अनिकेतः स्थिरमतिः भक्तिमान् मे प्रियः नरः ॥

शत्रु में और मित्र में, उसी तरह मान-अपमान में समान रहने वाला, सदी-गर्मी, सुख-दुःख में भी समान और किसी प्रकार की आसक्ति से रहित, निंदा-स्तुति में समान, अंतर्मुखी, जो कुछ भी सहज-2 मिले उसमें सन्तोषी, अनिश्चित निवास स्थान वाला और फिर भी स्थिर बुद्धि वाला श्रद्धाभावना से युक्त मनुष्य मुझको प्यारा लगता है;

**ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।**

**श्रद्धधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥ 12/20**

ये तु धर्म्यामृतम् इदम् यथा उक्तम् पर्युपासते ।  
श्रद्धधाना मत्परमा भक्ताः ते अतीव मे प्रियाः ॥

परंतु जो मेरे परायण हुए श्रद्धावान् ऊपर कहे गए इस धारणा रूपी अमृत का भली-भाँति आचरण करते हैं, वे भक्त मुझे अति प्यारे हैं ।

## अध्याय- 13

**श्रीभगवानुवाचः- इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।**

**एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥ 13/1**

इदम् शरीरम् कौन्तेय क्षेत्रम् इति अभिधीयते ।  
एतत् यः वेत्ति तम् प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥

हे अर्जुन! यह मुर्कर शरीर रूपी रथ क्षेत्र यज्ञकुण्ड इस नाम से कहा जाता है; इसको जो जानता है, उसको जानकार लोग 'क्षेत्रज्ञ' इस प्रकार कहते हैं ।

**क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।**

**क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥ 13/2**

क्षेत्रज्ञम् च अपि माम् विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।  
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः ज्ञानम् यत् तत् ज्ञानम् मतम् मम ॥

हे भरतवंशी! सर्वसामान्य क्षेत्र रूपी शरीरों में क्षेत्र का जानने वाला भी मुझ शिव को जानो और क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का जो ज्ञान है, वही सच्चा ज्ञान है-ऐसा मेरा मत है ।

**तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत् ।**

**स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥ 13/3**

तत् क्षेत्रम् यत् च यादृक् च यद्विकारि यतः च यत् ।  
स च यः यत्प्रभावः च तत् समासेन मे शृणु ॥

वह क्षेत्र जो है, जिस प्रकार का है तथा जो विकार वाला है और जहाँ से जिस स्वरूप का है और वह क्षेत्र जो और जिस प्रभाव वाला है, वह सब संक्षेप में मुझसे सुन ।

**ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।**

**ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ 13/4**

ऋषिभिः बहुधा गीतम् छन्दोभिः विविधैः पृथक् ।  
ब्रह्मसूत्रपदैः च एव हेतुमद्भिः विनिश्चितैः ॥

ऋषियों द्वारा अनेक प्रकार से नाना प्रकार के वेदमंत्रों द्वारा पृथक रीति और प्रमाण सहित सुनिश्चित ब्रह्म सूत्र के पदों द्वारा भी महिमा गायी गई है -

महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।

इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥ 13/5

महाभूतानि अहंकारः बुद्धिः अव्यक्तम् एव च ।

इन्द्रियाणि दश एकम् च पञ्च च इन्द्रियगोचराः ॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश—पञ्च महाभूत, अहंकार, बुद्धि उसी तरह एक अव्यक्त मन सहित दस इन्द्रियाँ और पाँच इन्द्रियों के विषय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध,

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातश्चेतना धृतिः ।

एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥ 13/6

इच्छा द्वेषः सुखम् दुःखम् संघातः चेतना धृतिः । एतत् क्षेत्रम् समासेन सविकारम् उदाहृतम् ॥

इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, स्मृति शक्ति, धारणा शक्ति आदि द्वंद्व और इन सबका समुदाय रूप पिण्ड— यह संक्षेप में विकार सहित क्षेत्र कहा गया है ।

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।

आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ 13/7

अमानित्वम् अदम्भित्वम् अहिंसा क्षान्तिः आर्जवम् । आचार्योपासनम् शौचम् स्थैर्यम् आत्मविनिग्रहः ॥

निर्मानभाव, पाखण्डहीनता, दुःख न देना, सहनशीलता, सरलता, स्मृतिपूर्वक शिवाचार्य के पास रहना, आंतरिक और बाह्य शुद्धि, स्थिरता और आत्मसंयम;

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च ।

जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ 13/8

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यम् अनहंकार एव च । जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥

इन्द्रियों के विषयों में वैराग्य, निरहंकारी भाव और जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, बीमारी और दुःखों के दोषों को समझना;

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।

नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ 13/9

असक्तिः अनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु । नित्यम् च समचित्तत्वम् इष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥

अनासक्ति, पुत्र, स्त्री, घर आदि में मोह न होना और चाही—अनचाही घटनाओं में सदा एकरस रहना;

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।

विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ 13/10

मयि च अनन्ययोगेन भक्तिः अव्यभिचारिणी । विविक्तदेशसेवित्वम् अरतिः जनसंसदि ॥

अनन्य सम्बंध से मेरे में अव्यभिचारी भक्तिभाव, मन—बुद्धि द्वारा एकांत स्थान— परमधाम में रहना और मनुष्यों की भीड़भाड़ में अरुचि;

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।

एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥ 13/11

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम् तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।

एतत् ज्ञानम् इति प्रोक्तम् अज्ञानम् यत् अतः अन्यथा ॥

सदैव आत्मज्ञान में लगे रहना, सृष्टि सम्बंधी तत्त्व ज्ञान का अर्थ समझना— 7वें श्लोक से लेकर इतना 'ज्ञान ऐसा' कहा गया है । इसके अतिरिक्त जो कुछ भी है, अज्ञान है ।

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।

अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥ 13/12

ज्ञेयम् यत् तत् प्रवक्ष्यामि यत् ज्ञात्वा अमृतम् अश्नुते ।  
अनादिमत् परम् ब्रह्म न सत् तत् न असत् उच्यते ॥  
जो जानने योग्य है, जिसे जानकर स्वर्ग का अनुभव करता है, उसे मैं कहता हूँ। वह आदिरहित परब्रह्म परमात्मा न परमाणुवत् सत् है और न असत् कहा जाता है।

**सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।**

**सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ 13/13**

सर्वतःपाणिपादम् तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् । सर्वतःश्रुतिमत् लोके सर्वम् आवृत्य तिष्ठति ॥  
पुरुषोत्तम स्वर्णिम संगमयुग में वह निराकार स्टेज वाला परं ब्रह्म परमेश्वर सब ओर हाथ-पैर वाला है, सब ओर आँख, मस्तक और मुख वाला और सब ओर कान वाला है तथा संसार में सबको आवृत करके रहता है।

**सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।**

**असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥ 13/14**

सर्वेन्द्रियगुणाभासम् सर्वेन्द्रियविवर्जितम् । असक्तम् सर्वभृत् च एव निर्गुणम् गुणभोक्तृ च ॥  
मुकर्कर रथ में प्रवेश करने पर जिस शिवशंकर में सब इन्द्रियों के गुणों का आभास होता है, फिर भी सब इन्द्रियों से रहित है, अनासक्त होने पर भी सबका भरण-पोषण करने वाला है और प्रकृति के सत-रज-तम तीन गुणों से रहित है, फिर भी उनका उपभोग करने वाला है,

**बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।**

**सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥ 13/15**

बहिः अन्तः च भूतानाम् अचरम् चरम् एव च ।  
सूक्ष्मत्वात् तत् अविज्ञेयम् दूरस्थम् च अन्तिके च तत् ॥  
वह परमपिता परमात्मा शिवशंकर योगशक्ति रूप में प्राणियों के बाहर और अंदर है, वह अचल और चलायमान भी है, सूक्ष्म ज्योतिर्बिन्दु आत्म स्टेज होने से उसे अज्ञानियों द्वारा जाना नहीं जाता और वह आत्मस्थिति से दूर परमधाम में स्थित है, फिर भी ज्ञानियों के निकट है।

**अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।**

**भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥ 13/16**

अविभक्तम् च भूतेषु विभक्तम् इव च स्थितम् । भूतभर्तृ च तत् ज्ञेयम् ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥  
वह परमपिता परमात्मा याद की शक्ति रूप से अखण्ड अर्थात् अविभाज्य है, फिर भी प्राणियों में जैसे काम वैसे नाम-रूप से विभक्त हुआ सा रहता है और इस प्रकार प्राणियों का भरण-पोषण करने वाला प्रवृत्तिमार्गीय अर्धनारीश्वर विष्णु, विनाशकर्ता शंकर और उत्पत्तिकर्ता ब्रह्मा-सरस्वती माना जाता है।

**ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।**

**ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥ 13/17**

ज्योतिषाम् अपि तत् ज्योतिः तमसः परम् उच्यते ।  
ज्ञानम् ज्ञेयम् ज्ञानगम्यम् हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥  
वह परमपिता परमात्मा ज्योतिमान नक्षत्रों की भी ज्योति है, अंधकार से परे कहा जाता है। वह ज्ञान है, जानने योग्य है, ज्ञान द्वारा ही पाने योग्य है और सबके मन-बुद्धि रूप अंतःकरण में योगशक्ति से विराजमान है।

**इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।**

**मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥ 13/18**

इति क्षेत्रम् तथा ज्ञानम् ज्ञेयम् च उक्तम् समासतः ।  
मद्भक्त एतत् विज्ञाय मद्भावाय उपपद्यते ॥

इस प्रकार मुर्कर रथ अर्थात् शरीर रूपी क्षेत्र तथा ज्ञान और जानने योग्य परमपिता परमात्मा शिवशंकर को संक्षेप में कहा गया है। मुझे याद करने वाला इसको जानकर मेरे ईशित्व अर्थात् शासनकर्ता भाव को प्राप्त करता है।

**प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।**

**विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ॥ 13/19**

प्रकृतिम् पुरुषम् च एव विद्धि अनादी उभौ अपि ।

विकारान् च गुणान् च एव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥

जड़त्व भाव वाली प्रकृति को और चेतन आत्मा को— दोनों को ही अनादि ही जानो और विकारों को तथा तीनों गुणों को भी प्रकृति से उत्पन्न हुआ जानो।

**कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।**

**पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥ 13/20**

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिः उच्यते । पुरुषः सुखदुःखानाम् भोक्तृत्वे हेतुः उच्यते ॥

प्रकृति को शरीर रूप कार्य और इन्द्रिय रूप साधन करण की रचना में कारण रूप कहा जाता है और आत्मा को सुख—दुःख का भोग स्वरूप अनुभव करने में कारण रूप कहा जाता है अर्थात् सुख—दुःख का अनुभव आत्मा को ही होता है, जड़ प्रकृति को नहीं;

**पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।**

**कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥ 13/21**

पुरुषः प्रकृतिस्थः हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान् । कारणम् गुणसंगः अस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥

क्योंकि जड़ प्रकृति में स्थित हुआ आत्मा प्रकृति से उत्पन्न हुए गुणों को भोगता है। इन सत्त्वादि गुणों में आसक्ति ही इस आत्मा के सतयुगी सत् और कलहयुगी असत् योनियों में जन्म लेने का कारण है।

**उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।**

**परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥ 13/22**

उपद्रष्टा अनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।

✧ परमात्मा इति च अपि उक्तः देहे अस्मिन् पुरुषः परः ॥

इस प्रजापिता ब्रह्मा की देह में स्थित परम पुरुष समीप से देखने वाला, कार्यों की अनुमति देने वाला, यज्ञ वत्सों का भरण—पोषण करने वाला, भोग की वासना लेने वाला, महान् ईश्वर शिव और परमात्मा रूपी परम पार्टधारी अर्थात् हीरो पार्टधारी इस तरह कहा जाता है। ✧ अर्थात् परमपिता शिव है और परमात्मा शंकर है।

**य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।**

**सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥ 13/23**

य एवम् वेत्ति पुरुषम् प्रकृतिम् च गुणैः सह । सर्वथा वर्तमानः अपि न स भूयः अभिजायते ॥

जो व्यक्ति इस प्रकार आत्मा और प्रकृति को गुणों के साथ जान लेता है, वह सब प्रकार कार्य आवर्तन करता हुआ भी पुनः इस दुःखी संसार में जन्म नहीं लेता।

**ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।**

**अन्ये साङ्ख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥ 13/24**

ध्यानेन आत्मनि पश्यन्ति केचित् आत्मानम् आत्मना ।

अन्ये साङ्ख्येन योगेन ✧ कर्मयोगेन च अपरे ॥

कुछ लोग गुणों के मनन—चिंतन द्वारा, दूसरे ज्ञान द्वारा, कोई ईश्वरीय याद द्वारा और अन्य कोई ईश्वरीय सेवा कर्म करते हुए अपने मन—बुद्धि से ज्योतिर्बिंदु आत्मा को अपने अंदर ही देखते हैं। ✧ ईश्वरीय पढ़ाई के चार विषयः— ज्ञान, योग, धारणा और सर्विस



अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।

तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥ 13/25

अन्ये तु एवम् अजानन्तः श्रुत्वा अन्येभ्यः उपासते ।

ते अपि च अतितरन्ति एव मृत्युम् श्रुतिपरायणाः ॥

किंतु कुछ अन्य शास्त्रवादी या कर्मकाण्डी आदि लोग ऐसा न जानते हुए दूसरों से सुनकर, न कि स्वयं देखकर—अनुभूति करके, उपासना करते हैं और वे सुनने—सुनाने वालों के आश्रित होने वाले, न कि मत्परायण, भी सामान्यतया मृत्युलोक को पार कर ही जाते हैं।

यावत्सञ्जायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥ 13/26

यावत् संजायते किञ्चित् सत्त्वम् स्थावरजंगमम् । क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् तत् विद्धि भरतर्षभ ॥

भरतश्रेष्ठ अर्जुन! जो कुछ जड़—चेतन पदार्थ उत्पन्न होता है, वह सब मुकरर शरीर रूपी प्रकृति और परमपुरुष शिव—शंकर के सम्बंध से उत्पन्न हुआ जान।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।

विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥ 13/27

समम् सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तम् परमेश्वरम् । विनश्यत्सु अविनश्यन्तम् यः पश्यति स पश्यति ॥

जो कल्पांत में विनाश होते हुए सब प्राणियों में योगशक्ति द्वारा समान भाव से अपक्षपाती भाव से बैठने वाले अविनाशी परमेश्वर शिव—शंकर को देखता है, वही ठीक देखता है;

समं पश्यन्ति सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।

न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥ 13/28

समम् पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितम् ईश्वरम् ।

न हिनस्ति आत्मना आत्मानम् ततः याति पराम् गतिम् ॥

क्योंकि सब परिस्थितियों में समान रूप से योगशक्ति द्वारा स्थिर रहने वाले ईश्वर को समान आत्मभाव से देखता हुआ अपने मन के सत् संकल्पों द्वारा आत्मा का घात नहीं करता और तब विष्णु रूप परमगति को पा लेता है

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।

यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥ 13/29

प्रकृत्या एव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।

यः पश्यति तथा आत्मानम् अकर्तारम् स पश्यति ॥

और जो पुरुष कर्मों को सब प्रकार से आत्मा के अनादि निश्चित स्वभाव के द्वारा पहले से ही किया हुआ देखता है और इसी तरह अपने को अकर्ता मानता है, वह ठीक देखता है।

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।

तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥ 13/30

यदा भूतपृथग्भावम् एकस्थम् अनुपश्यति । तत एव च विस्तारम् ब्रह्म संपद्यते तदा ॥

जब व्यक्ति प्राणियों की भिन्नता को एक बीजरूप परमात्मा में स्थित देखता है और उस बीज से ही सृष्टि वृक्ष के विस्तार को समझ लेता है, तब उसे ब्रह्मलोक प्राप्त हो जाता है।

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।

शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥ 13/31

अनादित्वात् निर्गुणत्वात् परमात्मा अयम् अव्ययः ।

शरीरस्थः अपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥

हे कुंती पुत्र अर्जुन! यह परमपिता परमात्मा शिवशंकर अनादि होने से और तीन गुणों के समुदाय से रहित अर्थात् अप्रभावित होने के कारण क्षयरहित है, जिससे प्रजापिता ब्रह्मा के शरीर में रहते हुए भी न कर्म करता है, न उनमें लिप्त होता है।

**यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।**

**सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥ 13/32**

यथा सर्वगतम् सौक्ष्म्यात् आकाशम् न उपलिप्यते ।

सर्वत्र अवस्थितः देहे तथा आत्मा न उपलिप्यते ॥

जैसे सब जगह पहुँचने वाला आकाश सूक्ष्म होने से नहीं जाना जाता, उसी तरह शरीर में सब जगह योगशक्ति से स्थित हुआ अति सूक्ष्म ज्योतिर्बिंदु आत्मा उपलब्ध नहीं होता।

**यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।**

**क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥ 13/33**

यथा प्रकाशयति एकः कृत्स्नम् लोकम् इमम् रविः ।

क्षेत्रम् क्षेत्री तथा कृत्स्नम् प्रकाशयति भारत ॥

हे भारत! जिस तरह एक सूर्य एक ही जगह रहकर इस सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार ज्योतिर्बिन्दु आत्मा भी भृकुटि—मध्य में रहकर सारे शरीर को प्रकाशित करता है।

**क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।**

**भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥ 13/34**

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः एवम् अन्तरम् ज्ञानचक्षुषा । भूतप्रकृतिमोक्षम् च ये विदुः यान्ति ते परम् ॥

इस प्रकार जो लोग शरीर रूपी प्रकृति और उसके ज्ञाता परमात्मा के अन्तर को और सब प्राणियों के प्रकृति से मुक्त होने को ज्ञान—नेत्रों द्वारा जान लेते हैं, वे परम पद विष्णुलोक को प्राप्त करते हैं।

## अध्याय- 14

**श्रीभगवानुवाचः— परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।**

**यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥ 14/1**

परम् भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानाम् ज्ञानम् उत्तमम् ।

यत् ज्ञात्वा मुनयः सर्वे पराम् सिद्धिम् इतः गताः ॥

पुनः, सब ज्ञानों में उत्तम श्रेष्ठ ज्ञान बताता हूँ, जिसे जानकर पूर्वकल्प में भी सब मुनिजन इस नरकलोक से परम सिद्धि को पहुँचे थे।

**इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।**

**सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥ 14/2**

इदम् ज्ञानम् उपाश्रित्य मम साधर्म्यम् आगताः । सर्गे अपि न उपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥

इस ज्ञान का आश्रय लेकर मेरे समान निराकारी—निर्विकारी गुणधर्म को प्राप्त हुए प्राणी इस दुःखी संसार में उत्पन्न नहीं होते और सृष्टि के महाविनाश में भी दुःखी नहीं होते। ❀ कयामत में खुदा के बन्दे दुःखी नहीं होते। (कुरान)

**मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ।**

**सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥ 14/3**

मम योनिः महत् ब्रह्म तस्मिन् गर्भम् दधामि अहम् । सम्भवः सर्वभूतानाम् ततः भवति भारत ॥

हे अर्जुन! मुकरर रथ रूपी महतत्व अथवा ब्रह्मलोक मेरी योनि है; मैं उसमें महाविनाश के समय समस्त ज्योतिर्बिंदु आत्माओं के ज्ञान का गर्भ डालता हूँ। उससे सब प्राणियों की उत्पत्ति होती है।

**सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।**

**तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥ 14/4**

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः। तासाम् ब्रह्म महत् योनिः अहम् बीजप्रदः पिता ॥

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! सब योनियों में जो देह की आकृतियाँ उत्पन्न होती हैं, उन सबकी योनि रूपा माता महतत्त्व मुकर्रर रथ रूपी परं ब्रह्म है और मैं शिव ज्योतिर्बिंदु आत्माओं का ज्ञानवीर्य रूपी बीज डालने वाला पिता हूँ।

**सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः ।**

**निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ 14/5**

सत्त्वम् रजः तमः इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः। निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनम् अव्ययम् ॥

दीर्घबाहु अर्जुन! सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण— ये क्रमशः प्रकृति स्वभाव से उत्पन्न हुए तीनों गुण अविनाशी आत्मा को शरीर में बाँधते हैं।

**तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।**

**सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ ॥ 14/6**

तत्र सत्त्वम् निर्मलत्वात् प्रकाशकम् अनामयम्। सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन च अनघ ॥

हे निष्पाप! उन गुणों में निर्मल होने से ज्ञान प्रकाश करने वाला और दुःखरहित सत्त्वगुण, ज्ञान के प्रति आसक्ति होने से और सुख की आसक्ति होने से आत्मा को सतयुगी दिव्य शरीर में बाँधता है।

**रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।**

**तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ॥ 14/7**

रजः रागात्मकम् विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम्। तत् निबध्नाति कौन्तेय कर्मसंगेन देहिनम् ॥

हे कुन्ती पुत्र! अनुरागस्वरूप रजोगुण को लोभ और आसक्ति से उत्पन्न हुआ जान और वह रजोगुण आत्मा को सांसारिक कर्मों के प्रति आसक्ति होने से रजोगुणी द्वापरयुगी विकर्मी शरीर में बाँधता है।

**तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।**

**प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥ 14/8**

तमः तु अज्ञानजम् विद्धि मोहनम् सर्वदेहिनाम्। प्रमादालस्यनिद्राभिः तत् निबध्नाति भारत ॥

हे ज्ञान की रोशनी में रत रहने वाले भारत! सब देहधारियों को मूढ़ बनाने वाले तमोगुण को तो अज्ञान से उत्पन्न हुआ जान। वह तमोगुण लापरवाही, आलस्य और निद्रा द्वारा आत्मा रूपी अण्डे को कलियुगी अत्यंत दुखदायी तामसी शरीर में बाँधता है।

**सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत ।**

**ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत ॥ 14/9**

सत्त्वम् सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत। ज्ञानम् आवृत्य तु तमः प्रमादे संजयति उत ॥

हे भारत! सत्त्वगुण स्वर्गीय सुख में और रजोगुण द्वापरयुगी सांसारिक कर्मों में लगाता है; किंतु तमोगुण बुद्धि को ढककर गफलत में भी डाल देता है।

**रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।**

**रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥ 14/10**

रजः तमः च अभिभूय सत्त्वम् भवति भारत। रजः सत्त्वम् तमः च एव तमः सत्त्वम् रजः तथा ॥

हे भारत! सतयुग—त्रैता में रजो और तमोगुण को दबाकर सत्त्वगुण प्रगट हो जाता है। द्वापर में सत्व और तमोगुण को दबाकर रजोगुण तथा कलियुग में सत्व और रजोगुण को दबाकर तमोगुण प्रबल हो जाता है।

**सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।**

**ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥ 14/11**

सर्वद्वारेषु देहे अस्मिन् प्रकाशः उपजायते।

ज्ञानम् यदा तदा विद्यात् विवृद्धम् सत्त्वम् इति उत॥

जब इस शरीर के सभी इन्द्रिय रूप द्वारों में अर्थात् हरेक इन्द्रिय से कर्म करते हुए ज्ञान रूपी प्रकाश उत्पन्न होने लगता है, तब अवश्य ही सत्त्वगुण बढ़ गया है, ऐसा जान ले।

**लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ।**

**रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥ 14/12**

लोभः प्रवृत्तिः आरम्भः कर्मणाम् अशमः स्पृहा । रजसि एतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ॥

हे भरत अर्थात् विष्णु वंश में श्रेष्ठ! रजोगुण बढ़ जाने पर लोभ, सांसारिक प्रवृत्ति, कर्मों की शुरुआत, अशांति और लालसा— ये सब उत्पन्न होते हैं।

**अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।**

**तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥ 14/13**

अप्रकाशः अप्रवृत्तिः च प्रमादः मोह एव च । तमसि एतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन॥

हे कुरुनन्दन! तमोगुण बढ़ जाने पर अज्ञानान्धकार, कार्यों में मन न लगना और लापरवाही और दैहिक लगाव—ये सब ही उत्पन्न होते हैं।

**यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ।**

**तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥ 14/14**

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयम् याति देहभृत् । तदा उत्तमविदाम् लोकान् अमलान् प्रतिपद्यते॥

कल्पांत में जब देहधारी मनुष्य सत्त्वगुण बढ़ जाने पर प्रलयकालीन अन्तिम मृत्यु को पाता है, तब तो वह पुरुषोत्तम परमात्मा को जानने वालों के निर्मल सतयुगी लोकों को प्राप्त करता है।

**रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते ।**

**तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥ 14/15**

रजसि प्रलयम् गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते । तथा प्रलीनः तमसि मूढयोनिषु जायते॥

रजोगुण में प्रलयकालीन महामृत्यु को पाकर सांसारिक कर्मों में आसक्ति वाले द्वापरयुगी मनुष्यों में उत्पन्न होता है, उसी प्रकार तमोगुणी अवस्था में प्रलयकालीन महामृत्यु को प्राप्त हुआ कलहयुगी मूढमति वाले राक्षसों में उत्पन्न होता है। {अंत मते सो गते।}

**कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।**

**रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥ 14/16**

कर्मणः सुकृतस्य आहुः सात्त्विकम् निर्मलम् फलम् ।

रजसः तु फलम् दुःखम् अज्ञानम् तमसः फलम्॥

पुण्यस्वरूप अच्छे कर्मों का सत्त्वप्रधान, निर्मल फल स्वर्ग कहा जाता है; किंतु राजसी कर्मों का फल दुःख या नरक और तामसी राक्षसी कर्मों का फल बुद्धिहीन जानवरों का, रौरव नरक है।

**सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।**

**प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥ 14/17**

सत्त्वात् संजायते ज्ञानम् रजसः लोभ एव च । प्रमादमोहौ तमसः भवतः अज्ञानम् एव च॥

सत्त्व गुण से समझशक्ति और रजोगुण से लोभ ही उत्पन्न होता है। तमोगुण से बेसमझी और लापरवाही तथा मूढ़ता उत्पन्न होती है।

**ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति रजसाः ।**

**जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥ 14/18**

ऊर्ध्वम् गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।  
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधः गच्छन्ति तामसाः ॥

कल्पांत में सत्व गुण में स्थिर रहने वाले ऊपर के सत-त्रेतायुगी देवलोक में जाते हैं, रजोगुणी स्वभाव वाले द्वापरयुगी पृथ्वीलोक में स्थित रहते हैं और नीच तमोगुणी वृत्तियों में स्थिर रहने वाले राक्षसी लोग अधोगति वाले कलियुगी-घोर नरक में जाते हैं ।

**नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति ।**

**गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥ 14/19**

न अन्यम् गुणेभ्यः कर्तारम् यदा द्रष्टा अनुपश्यति ।

गुणेभ्यः च परम् वेत्ति मद्भावम् सः अधिगच्छति ॥

जब देखने वाला गुणों के संघात के अलावा-अन्य किसी को कर्ता नहीं देखता और गुण संघात से परे सत्त्वस्थ आत्मा को जान लेता है, तब वह मेरे नित्य सत्त्वस्थ भाव को पा लेता है ।

**गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ।**

**जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥ 14/20**

गुणान् एतान् अतीत्य त्रीन् देही देहसमुद्भवान् ।

जन्ममृत्युजरादुःखैः विमुक्तः अमृतम् अश्नुते ॥

आत्मा देह से उत्पन्न होने वाले इन तीनों गुणों के संघात को पार करके जन्म-मरण और बुढ़ापे के दुःखों से अच्छी तरह मुक्त हुआ अमर पद अर्थात् स्वर्ग को भोगता है ।

**अर्जुन उवाच:- कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।**

**किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥ 14/21**

कैः लिङ्गैः त्रीन् गुणान् एतान् अतीतः भवति प्रभो ।

किमाचारः कथम् च एतान् त्रीन् गुणान् अतिवर्तते ॥

हे प्रभु! किन लक्षणों से पुरुषः इन तीनों गुणों के समुदाय से पार हो जाता है? उसका आचरण कैसा होता है और इन तीनों गुणों के संघात को कैसे पार कर जाता है?

**श्रीभगवानुवाच:- प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।**

**न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ॥ 14/22**

प्रकाशम् च प्रवृत्तिम् च मोहम् एव च पाण्डव । न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ॥

हे पाण्डु पुत्र अर्जुन! सत्त्वगुण के प्रकाश, रजोगुण की कर्मों में प्रवृत्ति और तमोगुणी मूढ़भाव के उत्पन्न होने पर जो न द्वेष करता है और न निवृत्त होने पर अकांक्षा करता है;

**उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।**

**गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥ 14/23**

उदासीनवत् आसीनः गुणैः यः न विचाल्यते । गुणा वर्तन्त इति एव यः अवतिष्ठति न इंगते ॥

जो तटस्थ-साक्षी की भाँति रहता हुआ प्रकृति के मायावी गुणों से विचलित नहीं होता और मायावी गुण ही परस्पर वर्तन कर रहे हैं- ऐसा समझकर जो स्थिर रहता है और डोलता नहीं;

**समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।**

**तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥ 14/24**

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः । तुल्यप्रियाप्रियः धीरः तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥

जो सुख-दुःख में समान है, स्वरूप में स्थित है, मिट्टी-पत्थर जैसी सस्ती अथवा स्वर्ण जैसी मूल्यवान् सांसारिक वस्तुओं में समान है, प्रिय और अप्रियजनों में समान है, धैर्यवान् है और निन्दा-स्तुति में समान है;

**मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।**

**सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥ 14/25**

मानापमानयोः तुल्यः तुल्यः मित्रारिपक्षयोः। सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते।।  
जो मान-अपमान में समान है, मित्र और शत्रु, दोनों पक्षों में समान रहता है और सब सांसारिक कर्मों का परित्याग कर चुका है, वह गुणों के संघात से परे कहा जाता है।

**मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।**

**स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ 14/26**

माम् च यः अव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते। स गुणान् समतीत्य एतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

और जो पुरुष अव्यभिचारी भक्तियोग द्वारा मुझ यज्ञ स्वरूप की मनसा, वाचा, कर्मणा सेवा करता है, वह इन गुणों के समुदाय को उल्लंघन करके नित्य सत्वस्थ ब्रह्मभाव के लिए योग्य हो जाता है;

**ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।**

**शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥ 14/27**

ब्रह्मणः हि प्रतिष्ठा अहम् अमृतस्य अव्ययस्य च ।

शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्य ऐकान्तिकस्य च।।

क्योंकि मैं ज्योतिर्बिन्दु शिव अविनाशी परम् ब्रह्म की और अमर पद-विष्णु की तथा शाश्वत सनातन धर्म की और अत्यन्तिक सुख की आबरू हूँ।

## अध्याय- 15

**श्रीभगवानुवाच:- ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुर्व्ययम् ।**

**छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ 15/1**

ऊर्ध्वमूलम् अधःशाखम् अश्वत्थम् प्राहुः अव्ययम् ।

छन्दांसि यस्य पर्णानि यः तम् वेद स वेदवित्।।

मनुष्य सृष्टि के बीजरूप प्रजापिता ब्रह्मा से उत्पन्न ब्राह्मण धर्म की ऊपर जाने वाली जड़ों वाले, अधोमुखी ब्रह्मा की पतनोन्मुखी अनेकानेक धर्मों की शाखाओं वाले तथा वेदादि जिसके पत्ते हैं, ऐसे चिरकाल तक स्थित रहने वाले सृष्टि रूपी अश्वत्थ वृक्ष को ऋषियों ने अविनाशी बताया है। जो उसे जानता है, वह वेदों का ज्ञाता है।

**अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।**

**अधश्च मूलान्यनुसन्तानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥ 15/2**

अधः च ऊर्ध्वम् प्रसृताः तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।

अधः च मूलानि अनुसन्तानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।।

उस सृष्टि वृक्ष की सत्व, रज, तम-तीनों गुणों द्वारा क्रमशः बढ़ने वाली और विषय विकार रूपी विधर्मों टहनियों या अंकुरों वाली शाखाएँ नीचे साकारी मनुष्य लोक में तथा ऊपर स्वर्गलोक में फैली हुई हैं; किंतु कर्मों को बाँधने वाली वैराइटी धर्म रूपी जड़ें नीचे मनुष्यलोक में फैली हुई हैं।

**न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा ।**

**अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥ 15/3**

न रूपम् अस्य इह तथा उपलभ्यते न अन्तः न च आदिः न च सम्प्रतिष्ठा ।

अश्वत्थम् एनम् सुविरूढमूलम् असंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा।।

इस सृष्टि वृक्ष का वैसा रूप इस दुनिया में उपलब्ध नहीं होता और न आदि, न मध्य और न अन्त ही दिखाई देता है। खूब पक्की ब्राह्मण धर्म रूपी जड़ों वाले इस अश्वत्थ को अनासक्ति रूपी मजबूत शस्त्र से काटकर,

**ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः ।**

**तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥ 15/4**

ततः पदम् तत् परिमार्गितव्यम् यस्मिन् गताः न निवर्तन्ति भूयः ।  
तम् एव च आद्यम् पुरुषम् प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥

संगमयुगी ब्राह्मण धर्म के उस लोक से उस परम पद विष्णुलोक को खोजना चाहिए अर्थात् जानना चाहिए, जिसमें गए हुए पुनः इस दुःखी संसार में नहीं लौटते और उसी आदि पुरुष शिव के साकार रूप—आदिदेव अर्धनारीश्वर महादेव की शरण लेना चाहिए, जिससे इस सृष्टि वृक्ष की पुरानी आदि सनातन देवी—देवता धर्म की प्रक्रिया प्रसारित हुई है ।

**निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।**

**द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसञ्ज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ 15/5**

निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।

द्वन्द्वैः विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैः गच्छन्ति अमूढाः पदम् अव्ययम् तत् ॥

मान और मोह से रहित, आसक्ति रूपी दोष को जीतने वाले, सदा ईश्वरीय ज्ञान में लगे रहने वाले, सांसारिक कामनाओं से विशेषतः निवृत्त हुए और सुख—दुःख नामक द्वन्द्वों से मुक्त हुए मोहरहित ज्ञानी उस अविनाशी पद स्वर्णिमयुगी विष्णुलोक को पाते हैं ।

**न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।**

**यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्भ्राम परमं मम ॥ 15/6**

न तत् भासयते सूर्यः न शशाङ्कः न पावकः । यत् गत्वा न निवर्तन्ते तत् धाम परमम् मम ॥

उस परमपद को न सूर्य, न चन्द्रमा और न अग्नि प्रकाशित करती है । जिस धाम को जाकर दुःखी संसार में वापस नहीं लौटते, वह मेरा परमधाम है ।

**ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।**

**मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥ 15/7**

मम एव अंशः जीवलोके जीवभूतः सनातनः । मनःषष्ठानि इन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥

सृष्टि में प्राणियों द्वारा उत्पन्न हुआ मेरा ही नित्य : योगबल रूपी अंश प्रकृति में रहने वाली मन सहित छः ज्ञानइन्द्रियों को खींचता है ।

**शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।**

**गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥ 15/8**

शरीरम् यत् अवाप्नोति यत् च अपि उत्क्रामति ईश्वरः ।

गृहीत्वा एतानि संयाति वायुः गन्धान् इव आशयात् ॥

जब इन्द्रियादि समूह का मालिक—आत्मा एक शरीर से बाहर निकलता है और जब दूसरे शरीर को धारण करता है तब, जैसे हवा फूलों के स्थान से सुगन्धियों को ले जाती है, वैसे ही आत्मा इन सूक्ष्म इन्द्रियों को लेकर जाता है ।

**श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।**

**अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥ 15/9**

श्रोत्रम् चक्षुः स्पर्शनम् च रसनम् घ्राणम् एव च । अधिष्ठाय मनः च अयम् विषयान् उपसेवते ॥

यह आत्मा कान, आँख, त्वचा, जिह्वा और नासिका तथा मन का आधार लेकर विषयों का सेवन करता है । {आत्मा अभोक्ता नहीं है ।}

**उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।**

**विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥ 15/10**

उत्क्रामन्तम् स्थितम् वा अपि भुञ्जानम् वा गुणान्वितम् ।

विमूढा न अनुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥

शरीर छोड़ते हुए अथवा उसमें रहते हुए अथवा उपभोग करते हुए जड़ प्रकृति के गुणों से युक्त होने वाले आत्मा को ज्ञान नेत्र वाले ज्ञानीजन देखते हैं, मूढ़जन नहीं देख पाते । {आत्मा निर्लेप और अभोक्ता नहीं ।}

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।

यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥ 15/11

यतन्तः योगिनः च एनम् पश्यन्ति आत्मनि अवस्थितम् ।

यतन्तः अपि अकृतात्मानः न एनम् पश्यन्ति अचेतसः ।।

ज्योतिर्बिन्दु आत्मा की याद का यत्न करते हुए योगीजन इस आत्मा को अपने में स्थित हुआ देखते हैं; किंतु अपने को वश में न करने वाले बुद्धू लोग यत्न करते हुए भी इस आत्मा को नहीं देख पाते ।

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।

यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ 15/12

यत् आदित्यगतम् तेजः जगत् भासयते अखिलम् ।

यत् चन्द्रमसि यत् च अग्नौ तत् तेजः विद्धि मामकम् ।।

जो सूर्य का तेज सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है तथा चन्द्रमा और अग्नि में जो तेज है, वह योगबल रूपी तेज मेरा जान । परमात्मा का योगबल रूपी तेज सर्वव्यापी है, न कि परमात्मा!

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।

पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥ 15/13

गाम् आविश्य च भूतानि धारयामि अहम् ओजसा ।

पुष्णामि च औषधीः सर्वाः सोमः भूत्वा रसात्मकः ।।

और मैं कल्पान्तकाल में पृथ्वी पर प्रवेश करके प्राणियों को योगबल द्वारा पोषण करता हूँ और ज्ञानरस स्वरूप सोमरस होकर सब औषधियों को पुष्ट करता हूँ ।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।

प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ 15/14

अहम् वैश्वानरः भूत्वा प्राणिनाम् देहम् आश्रितः । प्राणापानसमायुक्तः पचामि अन्नम् चतुर्विधम् ।।

मैं ही योगबल रूप में जठराग्नि होकर प्राणियों की देह के आश्रित हुआ चार प्रकार के—चर्व्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य अन्न को अंदर आने और बाहर जाने वाले 'प्राण-अपान' नामक श्वास से मिलकर पचाता हूँ ।

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥ 15/15

सर्वस्य च अहम् हृदि सन्निविष्टः मत्तः स्मृतिः ज्ञानम् अपोहनम् च ।

वेदैः च सर्वैः अहम् एव वेद्यः वेदान्तकृत् वेदवित् एव च अहम् ।।

कल्पांतकाल में मैं सबके मन में स्मृति रूप में निवास करता हूँ और मेरे से ईश्वरीय स्मृति अर्थात् योग और सच्चा ज्ञान तथा उनका लोप भी होता है । कल्पांत में मैं ही सब वेदों द्वारा जानने योग्य हूँ और वेदों का अंत करने वाला तथा वेदों का जानकार भी मैं हूँ ।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।

क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ 15/16

द्वौ इमौ पुरुषौ लोके क्षरः च अक्षरः एव च । क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थः अक्षरः उच्यते ।।

लोक में ये दो ही पुरुष हैं—नाशवान् और अविनाशी । सब प्राकृतिक भूत नाशवान् है और परमधाम रूपी ऊँचे शिखर पर रहने वाली अविनाशी—आत्मा कही जाती है;

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।

यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ 15/17

उत्तमः पुरुषः तु अन्यः परमात्मा इति उदाहृतः ।

यः लोकत्रयम् आविश्य बिभर्ति अव्ययः ईश्वरः ।।



किंतु इन दोनों से भिन्न सर्वोत्तम आत्मा हीरो पार्टधारी परमात्मा इस प्रकार कहा जाता है, जो क्षयरहित ईश्वर योगशक्ति द्वारा तीनों लोकों को अधिकार में लेकर धारण करता है; ❀ [मैं तो सिर्फ ब्रह्माण्ड का मालिक हूँ। तुम तो त्रिलोकीनाथ बनते हो। मु.....}

**यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।**

**अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ 15/18**

यस्मात् क्षरम् अतीतः अहम् अक्षरात् अपि च उत्तमः ।

अतः अस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥

जिस परमपार्टधारी परमात्मा से मैं विनाशी क्षर परे हूँ और मानवीय सृष्टि के बीजरूप आदि अविनाशी आत्मा से भी उत्तम हूँ। इसलिए इस संसार में और वेद में पुरुषों में उत्तम कहा गया हूँ।

**यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।**

**स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥ 15/19**

यः माम् एवम् असम्मूढः जानाति पुरुषोत्तमम् । स सर्ववित् भजति माम् सर्वभावेन भारत ॥

हे भारत! जो ज्ञानी मुझको इस प्रकार सब आत्माओं में श्रेष्ठ ज्योतिलिंग शिव को समझता है, वह सब कुछ जानने वाला मुझे समग्र भाव से सर्व संबंधों से याद करता है।

**इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ ।**

**एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥ 15/20**

इति गुह्यतमम् शास्त्रम् इदम् उक्तम् मया अनघ ।

एतत् बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात् कृतकृत्यः च भारत ॥

हे निष्पाप! इस तरह यह रहस्यपूर्ण आदेश अर्थात् श्रीमत मैंने तुम्हें बताई है। हे भारत! इसे जानकर मनुष्य समझदार और सफलमनोरथ बन जाता है।

## अध्याय- 16

**श्रीभगवानुवाच:- अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।**

**दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ 16/1**

अभयम् सत्त्वसंशुद्धिः ज्ञानयोगव्यवस्थितिः । दानम् दमः च यज्ञः च स्वाध्यायः तपः आर्जवम् ॥

निर्भयता, मन-बुद्धि की सफाई, ज्ञान-योग में निरन्तर स्थिर रहना और दान, इन्द्रियों का संयम, ईश्वरीय सेवा में तन-मन-धन की आहुति, आत्मविषयक अध्ययन, आत्म स्मृति में रहते हुए लोककल्याणार्थ शारीरिक आयास सहन करना और सरलता,

**अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।**

**दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ 16/2**

अहिंसा सत्यम् अक्रोधः त्यागः शान्तिः अपैशुनम् । दया भूतेषु अलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीः अचापलम् ॥

किसी को दुःख न देना, सत्य, क्रोध न करना, अशुभ का त्याग, शान्ति, दूसरों के दोष न देखना, प्राणियों पर दया, लोभहीनता, मीठापन, लज्जा, चंचलता न होना,

**तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।**

**भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ 16/3**

तेजः क्षमा धृतिः शौचम् अद्रोहः नातिमानिता । भवन्ति सम्पदम् दैवीम् अभिजातस्य भारत ॥

तेजस्विता, क्षमा, धैर्य, अन्दर-बाहर की शुद्धता, द्रोह न करना और अधिक मान न करना, हे भरतवंशी अर्जुन! ये गुण दैवी सम्पदा सहित जन्म लेने वालों के होते हैं।

**दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।**

**अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् ॥ 16/4**

दम्भः दर्पः अभिमानः च क्रोधः पारुष्यम् एव च ।

अज्ञानम् च अभिजातस्य पार्थ सम्पदम् आसुरीम् ॥

हे पृथ्वी के राजा! पाखंड, धन-परिवार का घमंड च और अभिमान तथा क्रोध, कठोरता और उसी तरह बेसमझी-ये अवगुण राक्षसी सम्पत्ति के साथ जन्म लेने वालों के हैं ।

**दैवी सम्पद्धिमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।**

**मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ॥ 16/5**

दैवी सम्पत् विमोक्षाय निबन्धाय आसुरी मता ।

मा शुचः सम्पदम् दैवीम् अभिजातः असि पाण्डव ॥

दैवी सम्पत्ति विशेष रूप से दुःखों से मुक्ति के लिए है और राक्षसी सम्पत्ति संपूर्णतया दुःखों में बंधने के लिए मानी गई है। हे पण्डा रूपी शिव पुत्र अर्जुन! तू दुःखी मत हो; क्योंकि तूने दैवी सम्पत्ति के साथ जन्म लिया है।

**द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।**

**दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥ 16/6**

द्वौ भूतसर्गौ लोके अस्मिन् दैव आसुर एव च । दैवः विस्तरशः प्रोक्त आसुरम् पार्थ मे शृणु ॥

हे पृथ्वीपति! इस विश्व में प्राणियों की सृष्टि दो प्रकार की ही है— सत-त्रेतायुगी देवताओं की और द्वापर-कलियुगी असुरों की, उनमें दैवी गुणों वाली सृष्टि विस्तारपूर्वक बताई जा चुकी है। अब आसुरी गुणों वाली सृष्टि को मेरे से सुन।

**प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुः आसुराः ।**

**न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥ 16/7**

प्रवृत्तिम् च निवृत्तिम् च जना न विदुः आसुराः ।

न शौचम् न अपि च आचारः न सत्यम् तेषु विद्यते ॥

आसुरी गुणों वाले मनुष्य करने योग्य कर्म और त्यागने योग्य कर्म को भी नहीं जानते। उनमें न शुद्धता, न सदाचार और सत्य भी नहीं होता।

**असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।**

**अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥ 16/8**

असत्यम् अप्रतिष्ठम् ते जगत् आहुः अनीश्वरम् । अपरस्परसम्भूतम् किम् अन्यत् कामहैतुकम् ॥

वे जगत् को मिथ्या, आधारहीन, ईश्वरहीन, एक-दूसरे के परस्पर संयोग से उत्पन्न हुआ और जिसमें काम वासना ही कारण रूप है, दूसरा क्या!—ऐसे कहते हैं। असुर लोग ही जगत् मिथ्या बताते हैं।

**एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।**

**प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥ 16/9**

एताम् दृष्टिम् अवष्टभ्य नष्टात्मानः अल्पबुद्धयः ।

प्रभवन्ति उग्रकर्माणः क्षयाय जगतः अहिताः ॥

ऐसे दृष्टिकोण का आश्रय लेकर नष्ट हुए स्वभाव वाले, क्षुद्रबुद्धि और क्रूर कर्म करने वाले लोग जगत् के बैरी बनकर उसका महाविनाश करने के लिए उत्पन्न होते हैं। जगत् को मिथ्या बताने वाले जगत् के बैरी हैं।

**काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।**

**मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥ 16/10**

कामम् आश्रित्य दुष्पूरम् दम्भमानमदान्विताः । मोहात् गृहीत्वा असद्ग्राहान् प्रवर्तन्ते अशुचिव्रताः ॥

कभी तृप्त न होने वाली कामनाओं का आश्रय लेकर दंभ, मान और मद से भरे हुए मूर्खता से असत्य सिद्धान्तों अथवा दुराग्रहों को पकड़कर अपवित्र कर्म करते हैं।

**चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।**

**कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥ 16/11**

चिन्ताम् अपरिमेष्याम् च प्रलयान्ताम् उपाश्रिताः । कामोपभोगपरमा एतावत् इति निश्चिताः ॥  
वे महाविनाश के साथ अंत होने वाली अनगिनत चिन्ताओं में पड़े हुए, कामवासना का उपभोग करना ही परम पुरुषार्थ है और 'यही सब कुछ है', ऐसा निश्चय करने वाले हैं।

**आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।**

**ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ॥ 16/12**

आशापाशशतैः बद्धाः कामक्रोधपरायणाः । ईहन्ते कामभोगार्थम् अन्यायेन अर्थसंचयान् ॥  
वे सांसारिक आशाओं के सैकड़ों फंदों में जकड़े हुए काम-क्रोध के वशीभूत होकर कामवासना को भोगने के लिए अन्यायपूर्वक धनसंग्रह करना चाहते हैं।

**इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।**

**इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥ 16/13**

इदम् अद्य मया लब्धम् इमम् प्राप्स्ये मनोरथम् ।  
इदम् अस्ति इदम् अपि मे भविष्यति पुनः धनम् ॥  
आज मुझे यह मिल गया। कल इस मनोरथ को पूरा कर लूँगा। यह इतना धनादि मेरे पास है; फिर भी मेरा इतना धन हो जावेगा।

**असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।**

**ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥ 16/14**

असौ मया हतः शत्रुः हनिष्ये च अपरान् अपि ।  
ईश्वरः अहम् अहम् भोगी सिद्धः अहम् बलवान् सुखी ॥  
मैंने इस दुश्मन को मार लिया है और भविष्य में दूसरे शत्रुओं को भी मार लूँगा। मैं समर्थ अर्थात् ऐश्वर्यवान हूँ, मैं उपभोग करने वाला हूँ, मैं सफल हूँ, बलवान और सुखी हूँ

**आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।**

**यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥ 16/15**

आढ्यः अभिजनवान् अस्मि कः अन्यः अस्ति सदृशः मया ।  
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इति अज्ञानविमोहिताः ॥  
मैं धनवान और बड़े अथवा ऊँचे कुल वाला हूँ। मेरे समान दूसरा कौन है? यज्ञ करूँगा, दान दूँगा, आनन्द मनाऊँगा— इस प्रकार के अज्ञान से मूर्ख बने हुए हैं।

**अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।**

**प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ 16/16**

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः । प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥  
अनेक विचारों में भटके हुए, मोहजाल में पूरे ही धिरे हुए और कामभोग में आसक्त हुए लोग गन्दे नरक में गिरते हैं।

**आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।**

**यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥ 16/17**

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः । यजन्ते नामयज्ञैः ते दम्भेन अविधिपूर्वकम् ॥

वे अपनी प्रशंसा में फूले हुए हठी, धन और मान-शान के नशे में चूर नाममात्र के यज्ञों से दम्भ सहित गीता विधान के प्रतिकूल यज्ञ करते हैं।

**अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।**

**मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥ 16/18**

अहंकारम् बलम् दर्पम् कामम् क्रोधम् च संश्रिताः । माम् आत्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तः अभ्यसूयकाः ॥

वे अहंकार, बल घमण्ड, कामविकार और क्रोध का आश्रय लेकर अपने और दूसरे के शरीर में स्थित मुझ योग शक्तिरूप परमेश्वर से प्रकृष्ट रूप से द्वेष करने वाले और घृणा करने वाले हैं।

**तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।**

**क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥ 16/19**

तान् अहम् द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान् । क्षिपामि अजस्रम् अशुभान् आसुरीषु एव योनिषु ॥

उन द्वेष करने वाले, क्रूर, मनुष्यों में सबसे नीच पापियों को मैं संसारचक्र में सदा कलियुगी आसुरी गुणों वाली राक्षसी योनियों में ही फेंकता हूँ।

**आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।**

**मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥ 16/20**

आसुरीम् योनिम् आपन्नाः मूढा जन्मनि जन्मनि ।

माम् अप्राप्य एव कौन्तेय ततः यान्ति अधमाम् गतिम् ॥

हे कुन्ती पुत्र! प्रत्येक जन्म में कलियुगी आसुरी गुणों वाली मनुष्य योनि को प्राप्त हुए मूढ़जन मुझको न पाकर, वहाँ से अधम गति को ही पाते हैं।

**त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।**

**कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥ 16/21**

त्रिविधम् नरकस्य इदम् द्वारम् नाशनम् आत्मनः ।

कामः क्रोधः तथा लोभः तस्मात् एतत् त्रयम् त्यजेत् ॥

काम, क्रोध तथा लोभ— ये आत्मा का नाश करने वाले नरक के तीन प्रकार के द्वार हैं; इसलिए इन तीनों को त्याग देना चाहिए।

**एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।**

**आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥ 16/22**

एतैः विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैः त्रिभिः नरः । आचरति आत्मनः श्रेयः ततः याति पराम् गतिम् ॥

हे कुन्तीपुत्र! इन तीनों अन्धकारमय नरक के द्वारों से मुक्त हुआ मनुष्य आत्मिक कल्याण का आचरण करता है, जिससे विष्णु रूप परम गति को पाता है।

**यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।**

**न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥ 16/23**

यः शास्त्रविधिम् उत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।

न स सिद्धिम् अवाप्नोति न सुखम् न पराम् गतिम् ॥

जो पुरुष श्रीमतभगवत् गीता विधान को छोड़कर अपनी मनमत के अनुसार बरतता है, वह न सफलता को, न सुख को और न विष्णु रूप परम गति को ही पाता है।

**तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।**

**ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥ 16/24**

तस्मात् शास्त्रम् प्रमाणम् ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।

ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तम् कर्म कर्तुम् इह अर्हसि ॥

इस कारण से तेरे लिए करने योग्य कर्म और विकर्म का फैसला करने में श्रीमद्भगवद्गीता का आदेश ही प्रमाण है। ऐसा जानकर इस संसार रूपी कुरुक्षेत्र अर्थात् कर्मक्षेत्र में सर्वशास्त्रशिरोमणि गीता के संविधान में कहा गया कर्म करने के लिए तू योग्य है।

## अध्याय- 17

**अर्जुन उवाच:- ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।**

**तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥ 17/1**

ये शास्त्रविधिम् उत्सृज्य यजन्ते श्रद्धया अन्विताः ।

तेषाम् निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वम् आहो रजः तमः ॥

हे कामादिक शत्रुओं को आकर्षित करने वाले शिव! जो श्रद्धा से भरकर श्रीमती गीता माता-शास्त्र के विधान को छोड़कर यज्ञ करते हैं, उन लोगों की स्थिति फिर सात्विक, राजसी अथवा तामसी- कैसी होती है?

**श्रीभगवानुवाच:- त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।**

**सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥ 17/2**

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनाम् सा स्वभावजा ।

सात्त्विकी राजसी च एव तामसी च इति ताम् शृणु ॥

देहधारियों की मौलिक स्वभाव से ही उत्पन्न हुई वह श्रद्धा सत्त्वगुणी और रजोगुणी तथा तमोगुणी- इस तरह 3 प्रकार की ही होती है, उसे सुन ।

**सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।**

**श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ 17/3**

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत । श्रद्धामयः अयम् पुरुषः यः यच्छ्रद्धः स एव सः ॥

हे भरतवंशी अर्जुन! सबकी श्रद्धा अनादिनिश्चित प्राणी स्वभाव के अनुकूल होती है। यह आत्मा जो श्रद्धा से युक्त होता है, जैसी श्रद्धा है, वह वैसा ही है।

**यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ।**

**प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥ 17/4**

यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः । प्रेतान् भूतगणान् च अन्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥

सत्त्वगुणी लोग देवताओं को, राजसी वृत्ति के लोग यक्ष-राक्षसों को और दूसरे तामसी लोग प्रेतों और देहधारी भूत समुदाय को पूजते अथवा याद करते हैं।

**अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।**

**दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥ 17/5**

**कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।**

**मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥ 17/6**

अशास्त्रविहितम् घोरम् तप्यन्ते ये तपः जनाः । दम्भाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥

कर्शयन्तः शरीरस्थम् भूतग्रामम् अचेतसः । माम् च एव अन्तःशरीरस्थम् तान् विद्धि आसुरनिश्चयान् ॥

जो लोग श्रीमती भगवद्गीता-शास्त्र के विधान से रहित घोर शारीरिक तप करते हैं, वे दंभ और अहंकार से भरकर कामना, आसक्ति और शारीरिक बल से भरे हुए बेसमझ लोग शरीर में स्थित पंचभूतों के समुदाय को और अंतःवाहक सूक्ष्म शरीर में स्थित मुझ योग शक्तिरूप आत्मा को भी कष्ट देते हैं। तू उनको आसुरी निश्चयवाला समझ ।

**आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।**

**यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥ 17/7**

आहारः तु अपि सर्वस्य त्रिविधः भवति प्रियः । यज्ञः तपः तथा दानम् तेषाम् भेदम् इमम् शृणु ॥

सब मनुष्यों का प्रिय भोजन भी तीन प्रकार का होता है। यज्ञ, तप तथा दान और इनके इस भेद को सुन ।

**आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।**

**रस्याः स्निग्धाः स्थिराः हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥ 17/8**

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः । रस्याः स्निग्धाः स्थिराः हृद्याः आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥

आयु, बुद्धि, बल, स्वास्थ्य, सुख और प्रेमभाव को विशेषतः बढ़ाने वाले, रसीले, चिकने, स्थिर रहने वाले रुचिकर भोजन सतोगुणी आत्माओं को प्रिय होते हैं ।

**कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।**

**आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ 17/9**

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः । आहारा राजसस्य इष्टाः दुःखशोकामयप्रदाः ॥

कड़ुवे, खट्टे, नमकीन, बहुत गरम, तीखे, रूखे और जलन पैदा करने वाले भोजन रजोगुणी आत्माओं को प्रिय हैं और वे दुःख, शोक और रोग पैदा करते हैं ।

**यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।**

**उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ 17/10**

यातयामम् गतरसम् पूति पर्युषितम् च यत् । उच्छिष्टम् अपि च अमेध्यम् भोजनम् तामसप्रियम् ॥

जिसके खाने का समय न रहा हो, स्वादहीन, सड़ा हुआ, बासी, जूटा और अपवित्र भोजन तमोगुणी आत्माओं को प्रिय है ।

**अफलाकाङ्क्षाभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।**

**यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥ 17/11**

अफलाकाङ्क्षिभिः यज्ञः विधिदृष्टः य इज्यते । यष्टव्यम् एव इति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥

किसी लौकिक फल की कामना न रखने वाले लोगों द्वारा श्रीमत् रूपी गीता विधान द्वारा भलीभाँति समझा हुआ और यज्ञ-सेवा करना ही कर्तव्य है इस प्रकार मन का समाधान करके अर्थात् निश्चयपूर्वक जो यज्ञ-सेवा कार्य किया जाता है, वह सात्त्विक है ।

**अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।**

**इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥ 17/12**

अभिसन्धाय तु फलम् दम्भार्थम् अपि च एव यत् । इज्यते भरतश्रेष्ठ तम् यज्ञम् विद्धि राजसम् ॥

किन्तु, हे भरतश्रेष्ठ अर्जुन! लौकिक फल का लक्ष्य लेकर, उसी तरह दम्भ अर्थात् दिखावे के लिए भी जो यज्ञ-सेवा कार्य किया जाता है, उस यज्ञ-सेवा को रजोगुणी जान ।

**विधिहीनमसृष्टान् मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।**

**श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥ 17/13**

विधिहीनम् असृष्टान् मन्त्रहीनम् अदक्षिणम् । श्रद्धाविरहितम् यज्ञम् तामसम् परिचक्षते ॥

भगवान् द्वारा बताए गए विधिविधान से रहित ब्रह्मा भोजन से रहित, मन्मनाभव रूपी महामन्त्र से रहित सम्मानहीन तथा श्रद्धाहीन यज्ञ-सेवा कार्य तमोगुणी कहा जाता है ।

**देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।**

**ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥ 17/14**

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम् शौचम् आर्जवम् । ब्रह्मचर्यम् अहिंसा च शारीरम् तप उच्यते ॥

जो दिव्य स्वभाव का द्विजन्मा ब्राह्मण है, सबका गुरु है, सर्वोत्तम ज्ञानी है, उसका पूरा सम्मान करना शुद्धता, सरलता, वचन—कर्म से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन और किसी को दुःख न देना शारीरिक तप कहा जाता है।

**अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।**

**स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥ 17/15**

अनुद्वेगकरम् वाक्यम् सत्यम् प्रियहितम् च यत् ।

स्वाध्यायाभ्यसनम् च एव वाङ्मयम् तप उच्यते ॥

औरों को कष्ट न पहुँचाने वाली सत्य बात कहना, जो प्रिय और हितकारी हो। उसी तरह आत्म—अध्ययन और नित्य अभ्यास वाणी का तप कहा जाता है।

**मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।**

**भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥ 17/16**

मनःप्रसादः सौम्यत्वम् मौनम् आत्मविनिग्रहः । भावसंशुद्धिः इति एतत् तपः मानसम् उच्यते ॥

मन की प्रसन्नता, शांतभाव, अन्तर्मुखी वृत्ति आत्मसंयम और मनोभावों अर्थात् संकल्पों की शुद्धता— यह इतना मानसिक तप कहा जाता है।

**श्रद्धया परया तप्तं तपस्तन्निविधं नरैः ।**

**अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥ 17/17**

श्रद्धया परया तप्तम् तपः तत् त्रिविधम् नरैः । अफलाकाङ्क्षिभिः युक्तैः सात्त्विकम् परिचक्षते ॥

किसी भी लौकिक फल की आकांक्षा न रखने वाले योगयुक्त मनुष्यों द्वारा परम श्रद्धा पूर्वक किया गया वह मनसा, वाचा, कायिक—तीन प्रकार का तप सात्त्विक कहलाता है।

**सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् ।**

**क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥ 17/18**

सत्कारमानपूजार्थम् तपः दम्भेन च एव यत् । क्रियते तत् इह प्रोक्तम् राजसम् चलम् अध्रुवम् ॥

लौकिक सत्कार, मान और पूजा के लिए तथा दम्भपूर्वक दिखावे के लिए जो अल्पकालीन अस्थायी लौकिक फल वाला तप किया जाता है, वह यहाँ राजसी कहा गया है।

**मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।**

**परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥ 17/19**

मूढग्राहेण आत्मनः यत् पीडया क्रियते तपः । परस्य उत्सादनार्थम् वा तत् तामसम् उदाहृतम् ॥

जो तप मूर्खतापूर्ण दुराग्रह के साथ अपने आप को पीड़ित करने के लिए किया जाता है अथवा दूसरों को हानि पहुँचाने के लिए किया जाता है— वह तामसी कहा जाता है।

**दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।**

**देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥ 17/20**

दातव्यम् इति यत् दानम् दीयते अनुपकारिणे ।

देशे काले च पात्रे च तत् दानम् सात्त्विकम् स्मृतम् ॥

देना हमारा कर्तव्य है यह समझकर जो दान बदले में उपकार करने में असमर्थ देश तथा काल और सत्पात्र को दिया जाता है, वह दान सात्त्विक माना गया है;

**यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।**

**दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥ 17/21**

यत् तु प्रत्युपकारार्थम् फलम् उद्दिश्य वा पुनः ।

दीयते च परिक्लिष्टम् तत् दानम् राजसम् स्मृतम् ॥

किंतु बदले में उपकार की भावना से अथवा फिर लौकिक फल की आशा लेकर जो दान कष्ट पूर्वक दिया जाता है, वह राजसी कहा गया है।

**अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।**

**असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ 17/22**

अदेशकाले यत् दानम् अपात्रेभ्यः च दीयते। असत्कृतम् अवज्ञातम् तत् तामसम् उदाहृतम्।।

अयोग्य देश—काल में और अयोग्य पात्र को जो दान असम्मानपूर्वक और अवज्ञापूर्वक दिया जाता है, वह तामसी कहा गया है।

**ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।**

**ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥ 17/23**

ॐ तत् सत् इति निर्देशः ब्रह्मणः त्रिविधः स्मृतः। ब्राह्मणाः तेन वेदाः च यज्ञाः च विहिताः पुरा।।

यह तीन प्रकार का ब्रह्मा का उपदेश स्मरण किया जाता है, उससे पूर्व कल्प में क्रमशः ब्रह्मा मुख से “ॐ” उच्चारणपूर्वक ‘मैं आत्मा हूँ’ ऐसे ब्राह्मणों और “तत्” निर्देशपूर्वक ‘वह परमात्मा सम्बंधी ज्ञान’ अर्थात् वेदों तथा “सत्” निर्देश पूर्वक यज्ञ रूपी सत् कर्मों का विधान किया गया।

**तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः ।**

**प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥ 17/24**

तस्मात् ओम् इति उदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः। प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततम् ब्रह्मवादिनाम्।।

इसलिए ही गीता रूपी संविधान में बताई गई ब्रह्मा का उपदेश बोलने वालों की यज्ञ—दान और तप सम्बंधी सभी क्रियाएँ ‘ओम्’ या ‘ऊँशांति’ ऐसा बोलकर सर्वदा शुरु की जाती हैं।

**तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ।**

**दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥ 17/25**

तत् इति अनभिसंधाय फलम् यज्ञतपःक्रियाः। दानक्रियाः च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः।।

उस रुद्र ज्ञान यज्ञ रूप परमात्मा के प्रति ‘तत्’ ऐसा कहकर किसी लौकिक फल को न चाहते हुए दुःखों से मुक्ति की आकांक्षा रखने वाले लोगों द्वारा नाना प्रकार की रुद्र ज्ञान यज्ञ—सेवाएँ और व्यक्तिगत तप की क्रियाएँ तथा दान के कार्य किए जाते हैं।

**सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।**

**प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥ 17/26**

सद्भावे साधुभावे च सत् इति एतत् प्रयुज्यते। प्रशस्ते कर्मणि तथा सत् शब्दः पार्थ युज्यते।।

वास्तविकता और अच्छाई और कल्याण के अर्थ में ‘सत्’ ऐसा यह शब्द प्रयोग किया जाता है। उसी तरह हे पृथ्वी के राजा! प्रशंसनीय यज्ञ—सेवा रूपी कर्म में भी ‘सत्’ शब्द लगाया जाता है।

**यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।**

**कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥ 17/27**

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सत् इति च उच्यते।

कर्म च एव तदर्थीयम् सत् इति एव अभिधीयते।।

तथा रुद्र ज्ञान यज्ञ—सेवा में, व्यक्तिगत मन—वचन—काय की तपस्या में और ज्ञानादि के दान में स्थित रहना भी ‘सत्’ ऐसे कहा जाता है, इसी प्रकार उन यज्ञादि के लिए किया गया कर्म भी सत्य— ऐसे कहा जाता है।

**अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।**

**असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥ 17/28**

अश्रद्धया हुतम् दत्तम् तपः तप्तम् कृतम् च यत्।



असत् इति उच्यते पार्थ न च तत् प्रेत्य नो इह ।।  
हे पृथ्वीपति! अश्रद्धापूर्वक आहुति दिया गया यज्ञ, दान, और किया गया मानसिक तप अथवा जो कुछ किया गया है, वह 'असत्' इस प्रकार कहा जाता है; क्योंकि वह कर्म न मरकर परलोक में और न इस संसार में फलीभूत होता है।

## अध्याय- 18

**अर्जुन उवाच:- सन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।**

**त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥ 18/1**

सन्यासस्य महाबाहो तत्त्वम् इच्छामि वेदितुम् । त्यागस्य च हृषीकेश पृथक् केशिनिषूदन ।।  
हे सहयोगियों रूपी दीर्घबाहु! हे इन्द्रियों के स्वामी! हे केशिहन्ता! लौकिक कर्मों के त्याग रूप सन्यास का और कर्मफल के त्याग का तत्व अलग-2 जानना चाहता हूँ।

**श्रीभगवानुवाच:- काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्यासं कवयो विदुः ।**

**सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥ 18/2**

काम्यानाम् कर्मणाम् न्यासम् संन्यासम् कवयः विदुः । सर्वकर्मफलत्यागम् प्राहुः त्यागम् विचक्षणाः ।।  
कुछ बुद्धिमान सांसारिक कामना वाले कर्मों के परित्याग को सन्यास समझते हैं, जबकि अन्य विद्वान लोग सभी सांसारिक कर्मों के फल-त्याग को त्याग बताते हैं।

**त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।**

**यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥ 18/3**

त्याज्यम् दोषवत् इति एके कर्म प्राहुः मनीषिणः । यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यम् इति च अपरे ।।  
कुछेक बुद्धिमान प्रत्येक सांसारिक कर्म दोष अर्थात् पाप की तरह त्याग करने योग्य है ऐसा कहते हैं और दूसरों का मत है कि यज्ञ-सेवा, दान और तप रूपी अलौकिक कर्म त्यागने योग्य नहीं हैं।

**निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।**

**त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः ॥ 18/4**

निश्चयम् शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम । त्यागः हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः ।।  
हे भरत कुल में उत्तम! उस त्याग के विषय में मेरा निश्चय सुन । क्योंकि हे पुरुषों में सिंह स्वरूप! त्याग तीन प्रकार का कहा गया है।

**यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।**

**यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ 18/5**

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यम् कार्यम् एव तत् । यज्ञः दानम् तपः च एव पावनानि मनीषिणाम् ।।  
रुद्र ज्ञान यज्ञ सेवा कार्य दान और मनसा तपस्या रूपी आत्मस्मृति-ये तीन त्यागने योग्य नहीं हैं, उसे करना ही चाहिए; क्योंकि अलौकिक यज्ञ, दान और आत्मस्मृति रूपी तपस्या ही बुद्धिमानों को पवित्र बनाते हैं।

**एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च ।**

**कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥ 18/6**

एतानि अपि तु कर्माणि संगम् त्यक्त्वा फलानि च ।  
कर्तव्यानि इति मे पार्थ निश्चितम् मतम् उत्तमम् ।।  
हे पृथ्वीपति! किंतु इन अलौकिक कर्मों को भी सांसारिक आसक्ति और फलों को त्याग कर ही करना चाहिए, ऐसा मेरा निश्चित उत्तम मत है। यदि यहीं फल भोग लिया, तो परलोक में क्या प्राप्ति होगी! •  
सर्विस से यहाँ सुख लेंगे तो वहाँ का सुख कम हो जावेगा। मु.16.1.67 पृ.3 आ.

**नियतस्य तु सन्न्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।**

**मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥ 18/7**

नियतस्य तु सन्न्यासः कर्मणः न उपपद्यते । मोहात् तस्य परित्यागः तामसः परिकीर्तितः ॥

परंतु पहले से नियत किए गए अनिवार्य कर्मों का परित्याग उचित नहीं है । मूर्खता से उसे सर्वथा त्याग देना तामसी त्याग कहलाता है ।

**दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।**

**स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥ 18/8**

दुःखम् इति एव यत् कर्म कायक्लेशभयात् त्यजेत् ।

स कृत्वा राजसम् त्यागम् न एव त्यागफलम् लभेत् ॥

जो कर्म दुःख रूप ही है यह समझकर शारीरिक कष्ट के भय से त्याग देता है, वह राजसी त्याग करके त्याग का फल ही नहीं पाता ।

**कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।**

**सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ॥ 18/9**

कार्यम् इति एव यत् कर्म नियतम् क्रियते अर्जुन ।

संगम् त्यक्त्वा फलम् च एव स त्यागः सात्त्विकः मतः ॥

हे अर्जुन! करने ही योग्य है ऐसा जानकर जो अलौकिक कर्म आसक्ति और फल को त्यागकर नियमपूर्वक—नित्य किया जाता है, वही सतयुगी—सात्त्विक त्याग माना जाता है ।

**न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।**

**त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥ 18/10**

न द्वेष्टि अकुशलम् कर्म कुशले न अनुषज्जते । त्यागी सत्त्वसमाविष्टः मेधावी छिन्नसंशयः ॥

लौकिक कर्मफल का त्याग करने वाला, सतोगुणी स्वभाव वाला, संशयहीन और बुद्धिमान् व्यक्ति कुशलता रहित—अप्रिय कर्म से घृणा नहीं करता और प्रिय कर्म म लगाव नहीं रखता;

**न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।**

**यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥ 18/11**

न हि देहभृता शक्यम् त्यक्तुम् कर्माणि अशेषतः ।

यः तु कर्मफलत्यागी स त्यागी इति अभिधीयते ॥

क्योंकि देहधारी कर्मों को सम्पूर्णतया त्यागने में समर्थ नहीं है; किंतु जो अलौकिक कर्म—फलों का त्याग करने वाला है, वह त्यागी है— यह कहलाता है ।

**अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।**

**भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु सन्न्यासिनां क्वचित् ॥ 18/12**

अनिष्टम् इष्टम् मिश्रम् च त्रिविधम् कर्मणः फलम् ।

भवति अत्यागिनाम् प्रेत्य न तु सन्न्यासिनाम् क्वचित् ॥

फल का त्याग न करने वालों को कर्म का अप्रिय—प्रिय और प्रिय—अप्रिय मिश्रित 3 प्रकार का फल मर कर भी प्राप्त होता है; किन्तु कर्मों का सम्पूर्ण त्याग करने वालों को कहीं भी प्राप्त नहीं होता ।

**पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।**

**साङ्ख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥ 18/13**

पंच एतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे । सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥

हे दीर्घबाहु! सारे कर्मों की सफलता के लिए सांसारिक कर्मों का अन्त करने वाले मेरे ज्ञान में इन पाँच कह गए कारणों को समझ लो ।

**अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।**

**विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥ 18/14**

अधिष्ठानम् तथा कर्ता करणम् च पृथग्विधम् ।

विविधाः च पृथक् चेष्टाः दैवम् च एव अत्र पञ्चमम् ॥

इस विषय में कर्म का आधारभूत शरीर, उसी तरह कर्म करने वाली आत्मा तथा विविध प्रकार की इन्द्रियाँ और विविध प्रकार के अलग-2 कर्म और पाँचवाँ अदृश्य भाग्य मुख्य कारण हैं।

**शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।**

**न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥ 18/15**

शरीरवाङ्मनोभिः यत् कर्म प्रारभते नरः । न्याय्यम् वा विपरीतम् वा पञ्च एते तस्य हेतवः ॥

शरीर, वाणी और मन द्वारा न्यायपूर्वक अथवा अन्यायपूर्वक जो कर्म मनुष्य करता है, उसके ये पाँचों कारण हैं।

**तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।**

**पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥ 18/16**

तत्र एवम् सति कर्तारम् आत्मानम् केवलम् तु यः ।

पश्यति अकृतबुद्धित्वात् न स पश्यति दुर्मतिः ॥

ऐसी दशा में ऐसा होने पर भी जो कच्ची बुद्धि के कारण एकमात्र अपने आप को कर्ता समझता है, वह दुष्टबुद्धि वाला ठीक नहीं देखता। अहंकार—त्याग

**यस्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।**

**हत्वापि स इमाल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥ 18/17**

यस्य न अहंकृतः भावः बुद्धिः यस्य न लिप्यते ।

हत्वा अपि स इमान् लोकान् न हन्ति न निबध्यते ॥

जिस ज्ञानी को 'मैंने किया है' ऐसा भाव नहीं है, जिसकी बुद्धि कर्म में लिप्त नहीं होती, वह इन कलियुगी पापी लोगों को मारकर भी नहीं मारता और न बंधनयुक्त होता है।

• बाप तो विनाश उनसे कराते हैं जिस पर कोई पाप न लगे। मु.11.5.90

**ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।**

**करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसङ्ग्रहः ॥ 18/18**

ज्ञानम् ज्ञेयम् परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना । करणम् कर्म कर्ता इति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥

समझ, समझने योग्य वस्तु और समझने वाला व्यक्ति—ये तीन प्रकार की कर्मों की प्रेरणा है। इन्द्रियादि साधन, कार्य तथा करने वाला व्यक्ति यह तीन प्रकार का कर्मों का संग्रह रूप आश्रय है।

**ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ।**

**प्रोच्यते गुणसङ्ख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥ 18/19**

ज्ञानम् कर्म च कर्ता च त्रिधा एव गुणभेदतः । प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावत् शृणु तानि अपि ॥

गुणों के ज्ञान में, ज्ञान और कर्म तथा करने वाला गुणों के भेद से तीन प्रकार के ही कहे जाते हैं। उन्हें भी यथार्थ रीति सुन।

**सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।**

**अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥ 18/20**

सर्वभूतेषु येन एकम् भावम् अव्ययम् ईक्षते । अविभक्तम् विभक्तेषु तत् ज्ञानम् विद्धि सात्त्विकम् ॥

जिस ज्ञान द्वारा अलग-2 हुए सब प्राणियों में अविनाशी और अखण्ड एक ही आत्मा—2 भाई—2 के भाव को देखता है, उसे सतयुगी सात्त्विक ज्ञान जान;

**पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ।**

**वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥ 18/21**

पृथक्त्वेन तु यत् ज्ञानम् नानाभावान् पृथग्विधान् । वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तत् ज्ञानम् विद्धि राजसम् ॥

किंतु जो ज्ञान सब प्राणियों में हिन्दू, मुस्लिम, सिक्खादि शारीरिक आकृति की भिन्नता द्वारा हिन्दुत्व आदि नाना प्रकार के भावों को अलग-2 रीति से जानता है, उस ज्ञान को द्वापरयुगी रजोगुण वाला जान;

**यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहेतुकम् ।**

**अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥ 18/22**

यत् तु कृत्स्नवत् एकस्मिन् कार्ये सक्तम् अहेतुकम् ।

अतत्त्वार्थवत् अल्पम् च तत् तामसम् उदाहृतम् ॥

किंतु जो एक ही सम्प्रदायिक कार्य में बिना किसी कारण के 'सब कुछ यही है' की भाँति आसक्त और तत्वहीन की तरह संकुचित अर्थात् क्षुद्र है, वह ज्ञान कलियुगी तमोगुण वाला कहा गया है, जैसे कि आज आत्मा-आत्मा भाई-भाई के भ्रातृभाव को सर्वथा भूलकर, अपने-2 मठपंथ सम्प्रदाय को ही सम्पूर्ण मान बैठे हैं ।

**नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।**

**अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥ 18/23**

नियतम् संगरहितम् अरागद्वेषतः कृतम् । अफलप्रेप्सुना कर्म यत् तत् सात्त्विकम् उच्यते ॥

नित्य-नियमपूर्वक, आसक्तिहीन रागद्वेष के बिना और फलेच्छा से रहित व्यक्ति द्वारा जो कर्म किया गया है, वह सतयुगी-सात्त्विक कहा जाता है;

**यत्तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः ।**

**क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ 18/24**

यत् तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः । क्रियते बहुलायासम् तत् राजसम् उदाहृतम् ॥

किंतु फल की कामना रखने वाले व्यक्ति द्वारा अहंकार पूर्वक अथवा बड़े परिश्रमपूर्वक जो कार्य बारंबार किया जाता है, वह द्वापरयुगी राजसी कहा गया है ।

**अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम् ।**

**मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥ 18/25**

अनुबन्धम् क्षयम् हिंसाम् अनवेक्ष्य च पौरुषम् । मोहात् आरभ्यते कर्म यत् तत् तामसम् उच्यते ॥

होने वाले परिणाम, हानि, हिंसा और सामर्थ्य को न देखकर मोहपूर्वक जो कर्म प्रारम्भ किया जाता है, वह कलियुगी तामसी कर्म कहा जाता है ।

**मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ।**

**सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते ॥ 18/26**

मुक्तसङ्गः अनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः । सिद्ध्यसिद्ध्योः निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते ॥

आसक्तिहीन, निरहंकारी, धैर्य और उत्साह से भरपूर और सफलता-असफलता में कामादिक विकृतियों से रहित सतयुगी सात्त्विक कर्म करने वाला कहा जाता है ।

**रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।**

**हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥ 18/27**

रागी कर्मफलप्रेप्सुः लुब्धः हिंसात्मकः अशुचिः । हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥

विषयों में आसक्त, कर्मफल की इच्छा रखने वाला,

लोभी, दूसरों को दुःख देने के स्वभाव वाला, अपवित्र और हर्ष-शोक से भरपूर द्वापरयुगी रजोगुणी कर्ता कहा जाता है ।

**अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।**

**विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥ 18/28**

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठः नैष्कृतिकः अलसः । विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥

असावधान या चंचल बुद्धि वाला, असभ्य या गँवार, हठी, धोखेबाज, नीच आलसी, दुःखी स्वभाव वाला और काम को टालने वाला या देर से करने वाला कलियुगी तमोगुणी कर्ता कहा जाता है ।

**बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।**

**प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय ॥ 18/29**

बुद्धेः भेदम् धृतेः च एव गुणतः त्रिविधम् शृणु । प्रोच्यमानम् अशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय ॥

हे ज्ञान धन जीतने वाले! गुणों के अनुसार धारणा शक्ति और बुद्धि के तीन प्रकार के भेद को भी सुन । मैं उन्हें पूरी तरह अलग-2 रूप से कह रहा हूँ ।

**प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।**

**बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥ 18/30**

प्रवृत्तिम् च निवृत्तिम् च कार्याकार्ये भयाभये ।

बंधम् मोक्षम् च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥

हे पृथ्वीपति! जो बुद्धि कर्मों में लगने और उनसे उपराम होने की क्रिया को करने योग्य और न करने योग्य को, भय और निर्भयता को तथा दुःखों के बंधन और उनसे मुक्ति को भी जानती है— वह सत्त्वगुणी बुद्धि है ।

**यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।**

**अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥ 18/31**

यया धर्मम् अधर्मम् च कार्यम् च अकार्यम् एव च । अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥

हे पृथ्वीपति! जिस बुद्धि से मनुष्य गुणों की धारणा रूप धर्म और उससे विपरीत अधर्म को और करने योग्य कर्तव्य या अकर्तव्य को भी गलत ढंग से जान पाती है, वह द्वापरयुगी राजसी बुद्धि है ।

**अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।**

**सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥ 18/32**

अधर्मम् धर्मम् इति या मन्यते तमसा आवृता । सर्वार्थान् विपरीतान् च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥

हे पृथ्वीपति अर्जुन! तमोगुण से ढकी हुई जो बुद्धि अधर्म को धर्म तथा सब अर्थों को उल्टा ही मानती है, वह कलियुगी तमोगुणी बुद्धि है ।

**धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।**

**योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥ 18/33**

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः । योगेन अव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥

हे अर्जुन! ईश्वरीय याद के द्वारा जिस अव्यभिचारी धारणा शक्ति से मन, प्राण और इन्द्रियों की सारी क्रियाएँ या चेष्टाएँ श्रीमत के विरुद्ध जाने से रोक ली जाती है, वह सात्त्विकी धारणा शक्ति है;

**यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन ।**

**प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥ 18/34**

यया तु धर्मकामार्थान् धृत्या धारयते अर्जुन । प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥

किंतु हे अर्जुन! जिस धारणा शक्ति से धर्म, धन और कामनाओं को अत्यन्त आसक्तिपूर्वक फल की आकांक्षा करते हुए धारण किया जाता है, हे पृथ्वीपति! वह रजोगुणी धारणाशक्ति है ।

**यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ।**

**न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥ 18/35**

यया स्वप्नम् भयम् शोकम् विषादम् मदम् एव च । न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥

हे पार्थ! दुष्ट बुद्धि वाला व्यक्ति जिस धारण शक्ति से स्वप्न, भय, शोक, खिन्नता—उदासी और गर्व को भी नहीं छोड़ता, वह तामसी धारणाशक्ति है;

**सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ।**

**अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥ 18/36**

सुखम् तु इदानीम् त्रिविधम् शृणु मे भरतर्षभ । अभ्यासात् रमते यत्र दुःखान्तम् च निगच्छति ॥

किंतु हे भरतश्रेष्ठ! इस तीन प्रकार के सुख को मेरे से सुन, जिसमें मनुष्य योग अभ्यास करने से आनन्दपूर्वक रमण करता है और दुःखों के अंत को पा लेता है ।

**यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।**

**तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ 18/37**

यत् तत् अग्रे विषम् इव परिणामे अमृतोपमम् । तत् सुखम् सात्त्विकम् प्रोक्तम् आत्मबुद्धिप्रसादजम् ॥

जो उस सुख के आरम्भ में विष की तरह और परिणाम में अमृत के समान है, वह आत्म स्वरूप में स्थित बुद्धि की प्रसन्नता से उत्पन्न हुआ सुख सतयुगी सात्त्विक कहा गया है ।

**विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।**

**परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥ 18/38**

विषयेन्द्रियसंयोगात् यत् तत् अग्रे अमृतोपमम् ।

परिणामे विषम् इव तत् सुखम् राजसम् स्मृतम् ॥

जो सुख विषयों और इन्द्रियों के संयोग से उसकी शुरुआत में अमृत के समान; किंतु परिणाम में विष की भाँति हो, उस सुख को राजसी माना गया है ।

**यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।**

**निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ 18/39**

यत् अग्रे च अनुबन्धे च सुखम् मोहनम् आत्मनः । निद्रालस्यप्रमादोत्थम् तत् तामसम् उदाहृतम् ॥

जो सुख आरम्भ में और अन्त में भी मन—बुद्धि को मोहित करने वाला तथा निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न हुआ है, वह सुख तामसिक कहा गया है ।

**न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।**

**सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥ 18/40**

न तत् अस्ति पृथिव्याम् वा दिवि देवेषु वा पुनः ।

सत्त्वम् प्रकृतिजैः मुक्तम् यत् एभिः स्यात् त्रिभिः गुणैः ॥

स्वभाव से उत्पन्न हुए इन तीनों गुणों से मुक्त जो हो, वह प्राणी या पदार्थ पृथ्वी पर या आकाश में अथवा देवताओं के बीच स्वर्ग में भी नहीं है ।

**ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप ।**

**कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥ 18/41**

ब्राह्मणक्षत्रियविशाम् शूद्राणाम् च परन्तप । कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैः गुणैः ॥

हे कामादिक शत्रुओं को तपाने वाले! ब्राह्मण, देव, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कर्म अनादिनिश्चित चतुर्युगी में आत्म—भाव से उत्पन्न हुए गुणों द्वारा प्रकृष्ट रूप से बँटे हुए हैं ।

**शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।**

**ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ 18/42**

शमः दमः तपः शौचम् क्षान्तिः आर्जवम् एव च ।

ज्ञानम् विज्ञानम् आस्तिक्यम् ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ।।

शांत भाव, इन्द्रियों का दमन, तप, शुद्धता, क्षमा, सरलता, ईश्वरीय ज्ञान और योग, विशेष अनुभवयुक्त ज्ञान, उसी तरह आस्तिकता—ये अनादि निश्चित आत्मभाव से उत्पन्न हुए ब्राह्मण धर्म की आत्माओं के सतयुगी स्वाभाविक गुण कर्म हैं ।

**शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।**

**दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ 18/43**

शौर्यम् तेजः धृतिः दाक्ष्यम् युद्धे च अपि अपलायनम् ।

दानम् ईश्वरभावः च क्षात्रम् कर्म स्वभावजम् ।।

शूरवीरता, तेज, महाआपत्ति में भी आत्मगुणों को धारण करने की शक्ति दक्षता—कुशलता तथा भयंकर मायावी युद्ध में भी न भागना, दान और प्रभुत्व—स्वामित्व—ये त्रेतायुगी क्षत्रियों के अनादि निश्चित स्वभाव से उत्पन्न हुए गुण—कर्म हैं ।

**कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।**

**परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥ 18/44**

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यम् वैश्यकर्म स्वभावजम् । परिचर्यात्मकम् कर्म शूद्रस्य अपि स्वभावजम् ।।

खेती, पशुओं की रक्षा और व्यापार आदि—अनादि निश्चित स्वभाव से उत्पन्न हुए द्वापरयुगी वैश्यों के कर्म हैं और इन सबकी नौकरी—चाकरी से सम्बंधित कलियुगी शूद्र के भी अनादि निश्चित आत्म—भाव से उत्पन्न हुए कर्म हैं । → भये वर्ण शंकर सबै तुलसीदास

**स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।**

**स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥ 18/45**

स्वे स्वे कर्मणि अभिरतः संसिद्धिम् लभते नरः । स्वकर्मनिरतः सिद्धिम् यथा विन्दति तत् शृणु ।।

अपने—2 कर्मों में निरंतर लगा हुआ मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धि—मुक्ति—जीवनमुक्ति को पा लेता है । अपने कर्म में अच्छी तरह लगा हुआ व्यक्ति जिस प्रकार दुःखों से मुक्ति रूप सिद्धि को पाता है, उसे सुन ।

**यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।**

**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥ 18/46**

यतः प्रवृत्तिः भूतानाम् येन सर्वम् इदम् ततम् । स्वकर्मणा तम् अभ्यर्च्य सिद्धिम् विन्दति मानवः ।।

कल्पान्तकालीन चतुर्युगी के अंत में जिस रुद्र ज्ञान यज्ञ पिता से जड़—चेतन भूतसमुदाय की उत्पत्ति, चेष्टा आदि क्रिया होती हैं और जिस यज्ञ पिता से यह सारा जगत् बीज से वृक्ष की तरह विस्तृत हुआ है, उस यज्ञ पिता की अपने स्वाभाविक कर्म से रूबरू अर्चना करके मनुष्य दुःखों से मुक्ति रूप सिद्धि को पाता है ।

**श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।**

**स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ 18/47**

श्रेयान् स्वधर्मः विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात् । स्वभावनियतम् कर्म कुर्वन् न आप्नोति किल्बिषम् ।।

जड़ प्रकृति के धर्म से विरुद्ध गुण वाला आत्मा का धर्म सुखपूर्वक पालन करने के कारण अधिक श्रेष्ठ है । अनादिनिश्चित आत्म—भाव द्वारा पहले से नियत किया हुआ कर्म करता हुआ पुरुष पाप का भागी नहीं बनता ।

**सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।**

**सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनग्निरिवावृताः ॥ 18/48**

सहजम् कर्म कौन्तेय सदोषम् अपि न त्यजेत् । सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेन अग्निः इव आवृताः ।।

हे कुन्ती पुत्र! सहज कर्म दोषयुक्त हो तो भी नहीं त्यागना चाहिए; क्योंकि धुएँ से अग्नि की तरह सभी सांसारिक कर्म दोष से ढके हुए हैं ।

- सब धंधों में है नुकसान सिवाय एक ईश्वरीय धंधे के। मु.ता.....

**असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।**

**नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां सन्न्यासेनाधिगच्छति ॥ 18/49**

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः। नैष्कर्म्यसिद्धिम् परमाम् सन्न्यासेन अधिगच्छति।।

सबमें आसक्ति रहित बुद्धि वाला, मन-बुद्धि

रूपी आत्मा को जीतने वाला और तृष्णाहीन व्यक्ति लौकिक कर्मों के समुचित त्याग द्वारा परम श्रेष्ठ, जहाँ कोई कर्म करना शेष न रहे, ऐसी बैकुण्ठ रूप नैष्कर्म्य सिद्धि को प्राप्त करता है।

**सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ।**

**समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥ 18/50**

सिद्धिम् प्राप्तः यथा ब्रह्म तथा आप्नोति निबोध मे।

समासेन एव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा।।

हे कुन्ती माता के पुत्र! जीवनमुक्त रूप सफलता—प्राप्त व्यक्ति जिस रीति ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है, उसी तरह ज्ञान की जो पराकाष्ठा—सर्वोच्च स्थिति है, उसे मेरे से संक्षेप में ही सुन।

**बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ।**

**शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥ 18/51**

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तः धृत्या आत्मानम् नियम्य च।

शब्दादीन् विषयान् त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च।।

राजयोग से विशेष शुद्ध की हुई निर्विकारी बुद्धि से ईश्वरीय स्मृति में लगा हुआ व्यक्ति धैर्यपूर्वक अपने मन को नियमित करके शब्द—रूप—रस आदि विषयों को त्याग कर और राग—द्वेष को छोड़कर,

**विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।**

**ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥ 18/52**

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः। ध्यानयोगपरः नित्यम् वैराग्यम् समुपाश्रितः।।

एकान्तप्रिय, अल्पाहारी, मनसा—वाचा—कर्मणा को मर्यादित करके नित्य विचार—सागर—मंथन और योग परायण हुआ पुरानी भस्म होने वाली कलियुगी दुनिया से वैराग्य भाव का सम्पूर्ण आश्रय लेने वाला है और

**अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।**

**विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ 18/53**

अहंकारम् बलम् दर्पम् कामम् क्रोधम् परिग्रहम्। विमुच्य निर्ममः शान्तः ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

अहंभाव, विकारी बल, घमंड, काम—क्रोध और 'यह चाहिए—वह चाहिए' आदि संग्रह वृत्ति को विशेष रूप से छोड़कर ममताहीन, शांतचित्त हुआ व्यक्ति ब्रह्मलोक से सर्वप्रथम उत्पन्न होने के लिए समर्थ है।

**ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।**

**समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ 18/54**

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति। समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिम् लभते पराम्।।

ब्रह्मलोक से उत्पन्न हुआ प्रसन्न मन वाला ब्राह्मण न शोक करता है, न सांसारिक आकांक्षा करता है और सब प्राणियों में समान दृष्टि वाला मेरी परम भक्ति-भावना का लाभ लेता है।

**भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ।**

**ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥ 18/55**

भक्त्या माम् अभिजानाति यावान् यः च अस्मि तत्त्वतः।

ततः माम् तत्त्वतः ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।।



तत्पश्चात् वह ब्राह्मण उस ईश्वरीय भक्ति-भावना द्वारा, मैं जो और जैसा हूँ वैसा ही मुझको यथार्थ रीति से भली-भाँति जान जाता है और मुझको यथार्थतः समझकर बाद में विष्णुलोक में प्रवेश करता है।

**सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्गुपाश्रयः ।**

**मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ 18/56**

सर्वकर्माणि अपि सदा कुर्वाणः मद्गुपाश्रयः। मत्प्रसादात् अवाप्नोति शाश्वतम् पदम् अव्ययम्॥

सदा मेरा ही विशेष आश्रय लेने वाला सब कर्मों को करता हुआ भी मेरी प्रसन्नता से चिरकालीन अविनाशी विष्णु रूप परम् पद को पाता है।

**चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्परः ।**

**बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥ 18/57**

चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्परः। बुद्धियोगम् उपाश्रित्य मच्चित्तः सततम् भव॥

मन-बुद्धि पूर्वक सब कर्मों को मेरे में अर्पण करके मेरे परायण हुआ, बुद्धियोग का आधार लेकर निरन्तर मेरे में चित्त लगाने वाला हो।

**मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।**

**अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ॥ 18/58**

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात् तरिष्यसि। अथ चेत् त्वम् अहंकारात् न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि॥

मेरे में मन-बुद्धि लगाने वाला मेरी प्रसन्नता से सब विघ्नों रूपी दुर्गों की दीवारों को पार कर जाएगा और यदि तू अहंकार के कारण मेरी बात नहीं सुनेगा तो सर्वथा नष्ट हो जाएगा।

**यदहङ्कारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।**

**मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥ 18/59**

यत् अहंकारम् आश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।

मिथ्या एषः व्यवसायः ते प्रकृतिः त्वाम् नियोक्ष्यति॥

जो अहंकार का आसरा लेकर 'युद्ध नहीं करूँगा'— ऐसा ही मानेगा, तो तेरा यह सोचना व्यर्थ है; क्योंकि तेरा अनादि निश्चित स्वभाव—आत्मभाव तुझको युद्ध में लगा देगा।

**स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।**

**कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ॥ 18/60**

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।

कर्तुम् न इच्छसि यत् मोहात् करिष्यसि अवशः अपि तत्॥

हे कुन्ती माता के पुत्र! अनादि निश्चित स्वभाव से उत्पन्न हुए अपने कर्म से बँधा हुआ यदि मूर्खतावश करने की इच्छा नहीं करता है, तो भी बरबस हुआ तू अवश्य करेगा।

**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।**

**भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ 18/61**

ईश्वरः सर्वभूतानाम् हृद्देशे अर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

हे सद्भाग्य का अर्जन करने वाले! आज सब प्राणियों के हृदय में ईश्वर नंवार योगशक्ति स्वरूप से बैठा हुआ है और चाक रूपी सृष्टि-चक्र अर्थात् यंत्र पर चढ़ाए हुए उन सब प्राणियों को माया द्वारा भ्रमित किया जा रहा है।

**तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।**

**तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥ 18/62**

तम् एव शरणम् गच्छ सर्वभावेन भारत।

तत् प्रसादात् पराम् शांतिम् स्थानम् प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

हे भारत! समग्र भाव से उस शिव ईश्वर की ही शरण ले। उसकी प्रसन्नता से परम शान्ति और चिरकालीन विष्णु रूप परम पद को प्राप्त करेगा।

**इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।**

**विमृश्यैतदशेषेण यथैच्छसि तथा कुरु ॥ 18/63**

इति ते ज्ञानम् आख्यातम् गुह्यात् गुह्यतरम् मया ।

विमृश्य एतत् अशेषेण यथा इच्छसि तथा कुरु ॥

इस प्रकार गुप्त से भी अत्यन्त गुप्त एडवांस ज्ञान मैंने तुझे कहा है। इस पर पूरी तरह विचार-सागर-मंथन करके जैसा चाहे वैसा कर।

**सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।**

**इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥ 18/64**

सर्वगुह्यतमम् भूयः शृणु मे परमम् वचः । इष्टः असि मे दृढम् इति ततः वक्ष्यामि ते हितम् ॥

फिर से मेरे सबसे अधिक रहस्यमय और परमोत्कृष्ट वचनों को सुन; क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है; इसलिए तेरी भलाई की बात बताता हूँ।

**मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।**

**मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥ 18/65**

मन्मना भव मद्भक्तः मद्याजी माम् नमस्कुरु । माम् एव एष्यसि सत्यम् ते प्रतिजाने प्रियः असि मे ॥

हे अर्जुन तू मेरे में मन लगाने वाला, मुझे भजने वाला और मेरे प्रति कर्मों की यज्ञसेवा करने वाला बन जा। मेरे प्रति नमस्कार कर, इससे तू मुझे अवश्य पा लेगा। मैं तेरे से सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि तू मुझे प्रिय है।

**सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।**

**अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ 18/66**

सर्वधर्मान् परित्यज्य माम् एकम् शरणम् व्रज । अहम् त्वा सर्वपापेभ्यः मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

मठ-पंथ सम्प्रदायादि दैहिक दिखावे वाले सब हिन्दू-मुस्लिमादि धर्मों को परित्याग करके एक मुझ निराकार स्टेज वाले शिव-शंकर की शरण में जा। मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूँगा। तू शोक मत कर।

**इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।**

**न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥ 18/67**

इदम् ते न अतपस्काय न अभक्ताय कदाचन ।

न च अशुश्रूषवे वाच्यम् न च माम् यः अभ्यसूयति ॥

जिसने कभी आत्मस्थिति रूप तप न किया हो, जो श्रद्धा-भक्ति भाव से रहित हो, जिसमें यज्ञसेवा भाव न हो और जो मेरी निन्दा करता हो, उसे यह ज्ञान तू कभी भी मत बताना।

**य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।**

**भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥ 18/68**

य इमम् परमम् गुह्यम् मद्भक्तेषु अभिधास्यति ।

भक्तिम् मयि पराम् कृत्वा माम् एव एष्यति असंशयः ॥

जो मनुष्य इस परम रहस्यमय ज्ञान को मेरे भक्तों के बीच सुनाएगा, वह मेरी सबसे श्रेष्ठ याद करके बिना किसी संशय के मुझे ही प्राप्त करेगा।

**न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृतमः ।**

**भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥ 18/69**

न च तस्मात् मनुष्येषु कश्चित् मे प्रियकृत्तमः। भविता न च मे तस्मात् अन्यः प्रियतरः भुवि।।  
मनुष्यों में कोई भी मेरा उससे अधिक प्रिय कर्म करने वाला नहीं है और पृथ्वी भर में मुझे उसके अलावा कोई दूसरा व्यक्ति अधिक प्रिय नहीं होगा।

**अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।**

**ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥ 18/70**

अध्येष्यते च य इमम् धर्म्यम् संवादम् आवयोः।

ज्ञानयज्ञेन तेन अहम् इष्टः स्याम् इति मे मतिः।।

जो मनुष्य हम दोनों भक्त और भगवान के इस धारण करने योग्य वार्तालाप का अध्ययन करेगा, उस रुद्र ज्ञान यज्ञ के द्वारा मैं उसका प्रिय बनूँगा, ऐसी मेरी मान्यता है।

**श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ।**

**सोऽपि मुक्तः शुभाल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ॥ 18/71**

श्रद्धावान् अनसूयः च शृणुयात् अपि यः नरः।

सः अपि मुक्तः शुभान् ♥लोकान् प्राप्नुयात् पुण्यकर्मणाम्।।

जो श्रद्धावान और ईर्ष्यारहित मनुष्य इस ज्ञान को केवल सुन लेता है, वह भी दुःखों से मुक्त हुआ पुण्यकर्मशाली देवताओं के शुभ लोकों को पा लेता है। ♥ मेरे मुख से दो शब्द भी सुनने वाला स्वर्ग में अवश्य आएगा।

**कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।**

**कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय ॥ 18/72**

कच्चित् एतत् श्रुतम् पार्थ त्वया एकाग्रेण चेतसा। कच्चित् अज्ञानसंमोहः प्रनष्टः ते धनञ्जय।।

हे पृथ्वीपति! क्या तूने एकाग्र चित्त से यह ज्ञान सुना? हे ज्ञानधन जीतने वाले! क्या बेसमझी से उत्पन्न हुआ तेरा मोह पूर्णतः दूर हो गया है?

**अर्जुन उवाच:- नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।**

**स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥ 18/73**

नष्टः मोहः स्मृतिः लब्धा त्वत्प्रसादात् मया अच्युत।

स्थितः अस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनम् तव।।

ऊँची स्टेज से कभी नीचे न गिरने वाले हे परमेश्वर शिव! आपकी प्रसन्नता से मेरा मोह नष्ट हो गया है, अपनी आत्मा के विष्णु स्वरूप की स्मृति प्राप्त हुई है और मैं निश्चयबुद्धि होकर स्थिर हो गया हूँ। आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

**सञ्जय उवाच:- इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।**

**संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ 18/74**

इति अहम् वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः। संवादम् इमम् अश्रौषम् अद्भुतं रोमहर्षणम्।।

इस प्रकार मैंने ज्ञान धनदाता वसुदेव परमपिता शिव के पुत्र वासुदेव शंकर का और पृथ्वीपति महान् आत्मा रूपी अर्जुन का आश्चर्यजनक और रोंगटे खड़े करने वाले इस संवाद को सुना है।

**व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्ब्रह्ममहं परम् ।**

**योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥ 18/75**

व्यासप्रसादात् श्रुतवान् एतत् गुह्यं अहं परम्।

योगं योगेश्वरात् कृष्णात् साक्षात् कथयतः स्वयम्।।

व्यास अर्थात् प्रजापिता ब्रह्मा की प्रसन्नता से यह रहस्यमय परमश्रेष्ठ योग स्वयं साक्षात् आत्मा रूपी गोपियों को और कामादिक शत्रुओं को आकृष्ट करने वाले योगेश्वर परमपिता शिव-शंकर द्वारा कहते हुए मैंने सुना है।

**राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।**

**केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥ 18/76**

राजन् संस्मृत्य संस्मृत्य संवादम् इमम् अद्भुतम् । केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥

हे पूंजीवादी राजा धृतराष्ट्र! परमेश्वर शिव और पुरुषार्थ का अर्जन करने वाले अर्जुन के इस आश्चर्यजनक और पवित्र वार्तालाप को बार-2 स्मरण करके मैं पुनः पुनः हर्षित हो रहा हूँ

**तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।**

**विस्मयो मे महान् राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः ॥ 18/77**

तत् च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपम् अत्यद्भुतं हरेः । विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः ॥

और हे राजन! शिवशंकर के उस अत्यन्त आश्चर्यमय विराट रूप को बार-2 याद करके मुझको अत्यधिक विस्मय होता है और मैं पुनः पुनः हर्षित हो रहा हूँ।

**यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।**

**तत्र श्रीविजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ 18/78**

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः । तत्र श्रीः विजयो भूतिः ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

जहाँ योगियों के ईश्वर आत्माओं को आकृष्ट करने वाले परमपिता शिव हों और जहाँ पुरुषार्थ रूपी धनुष धारणकर्ता विश्वनाथ शंकर हों, वहाँ सरस्वती का अपर रूप लक्ष्मी, विजय, ऐश्वर्य और अटल नीति होती है, ऐसा मेरा निश्चय है।

## **शब्दार्थ :-**

**आदित्य-** अदितेः अपत्यं-अदिति पुत्र अथार्त् सूर्य । जैसे:-10/21, 11/6

**अनन्तं-** नास्ति अंतःगुणानामस्य-जिसके गुणों का अंत नहीं है अर्थात् विष्णु । जैसे:11/37,11/47 **अर्यमन्-** अर्य-श्रेष्ठं मिमीते मा+कनिन-सूर्य । जैसे:10/29

**अश्वत्थं-** न श्वश्चिरं तिष्ठति सृष्टिवृक्ष । जैसे:-10/26, 15/1

**ब्रह्मं-** बृंहति वर्धते बृहं+मनिन्-जो बड़े/वृद्ध रूप में माननीय है । जैसे:-3/15

**देव-** दीव्यति आनंदेन क्रीडती वा अर्थात् आनंद से जो खेल खिलाता है वह -देवता । जैसे:- 11/14, 11/15 **धेनु-** धीयते पीयते वत्सैः धेत्+नु+इच्च-बच्चों के द्वारा जिसका दूध पीया जाता है । जैसे:-10/28

**गाण्डीव-** गाण्डि ग्रन्थिरस्यरस्ति-वज्र की गांठ से बना हुआ पुरुषार्थ रूपी धनुष, जो प्रजापिता ब्रह्मा के पास रहा था । जगत् का संहार करने के लिए इसका निर्माण हुआ था और देवरक्षित था । जैसे:-1/30

**हृषीकेश-** इन्द्रियों रूपी घोड़ों के स्वामी । जैसे:-1/15, 2/9

**ईश्वरः-** ईश+वरच्-महादेव, कामदेव, चैतन्यात्मा । जैसे:-4/6, 15/8

**जनार्दन-** जनैः+अर्द्यते-याच्यते पुरुषार्थ लाभाय-परमेश्वर । जैसे:-1/36

**जयद्रथ-** जयत्+रथः अर्थात् जिसका रथ जय पाता हो । जैसे:-11/34

**कौन्तेय-** कुन्त्याः अपत्यं अर्थात् कुंती पुत्र अर्जुन । जैसे:-1/27, 2/14

**केशव-** केशाः प्रशस्ताः सन्त्यस्य-जिसके ज्ञान के केश फैले हुए हैं अर्थात् परमेश्वर ।

जैसे:-1/31, 2/54 **कृष्ण-** कर्षत्यरीन्-कर्षति+अरीन् महाप्रभाव शक्त्या अर्थात् जो शक्ति के महाप्रभाव से शत्रुओं को आकर्षित करती है । जैसे:-1/28, 5/1

**कुन्ती-** अदिति-न दीयते खण्ड्यते ब्रह्त्वात् इत्यिदिति अर्थात् जो खंडित नहीं की जाती । 'भारतमाता' तस्याः पुत्री भारती-सरस्वती कुन्ती वा । जैसे:-1/16

**मधुसूदन-** मधु नामक काम विकार रूपी दैत्य को मारने वाले कामनाथ शिव, मधु-शराब, तमोगुण से पैदा हुआ दैत्य । जैसे:-1/35, 2/1

**मंत्र-** मन्त्र्यते, गुप्तं परिभाष्यते-गुप्त बातचीत भाषणादि । जैसे:-9/16

**नकुल-** नास्ति कुलं यस्य-जो न पांडव कुल के हैं, न कुरु यादव कुल के, कभी इधर और कभी उधर, इन्होंने पश्चिम दिशा पर विजय पाई थी और अत्यन्त सुंदर थे जैसे:-1/16

**नारद-** नारं परमात्मविषयकं ज्ञान ददाति-परमात्म विषयक ज्ञान देने वाला अर्थात् नारद । जैसे:-10/13, 10/26

**पंड-** पंडयति संचयति—इकट्ठा करता है।

**पार्थ-** पृथिव्याः ईश्वरः—पृथ्वी का शासनकर्ता। जैसे:-1/25, 2/3

**सहदेव-** सह दीव्यति, क्रीडती वा-जो परमात्मा के साथ ही खेलते हैं। जैसे:-1/16

**शाश्वत-** सदाकाल रहने वाला। जैसे:-2/20, 18/62

**वार्षीय-** वृष्णि वंश से उत्पन्न अर्थात् ज्ञानियों के कुल से उत्पन्न—वृष्णि का अर्थ है—वर्षा करने वाला मेघ। जैसे:-1/41, 3/36

**वासुदेव-** धन सम्पत्ति दाता परमात्मा वसुदेव अर्थात् ज्ञानधन दाता का पुत्र प्रजापिता ब्रह्मा। जैसे:-7/19, 10/37

**विभु-** वि=विशेष रूप से+भू भवनं वा—विराट रूप में, विशेष रूप से प्रगट होता है। जैसे:-10/12

**विभूति-** विविधं भवति सृष्टिः+अनया—जिससे विशेष प्रकार की सृष्टि उत्पन्न होती है। जैसे:-10/7, 10/18

**व्यासवि+आस्-** जो वाणी चलाने के लिए विशेष रूप से बैठता है। जैसे:-18/75

**यातयाम-** गतः उपभोगेकालो यस्य तं—जिसका उपभोग काल समाप्त हो चुका है। जैसे:-17/10

**युधिष्ठिर-** युधिः+स्थिरः—धर्मयुद्ध में स्थिर रहने वाले ब्रह्मा—जो पांडवों में सबसे प्रधान हैं और धर्मराज कहे जाते हैं। जैसे:-1/16